चौथी दुनिया

मूल्य 20 रुपये

दिल्ली रविवार 21 जून 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

भीतर

4 महिला आरक्षण बिल पर बाज़ी मारने की तैयारी

7 सिख विरोधी दंगों के घाव अब भी हरे हैं

8 दाऊद की आड़ में दहशत फैलाने का खेल

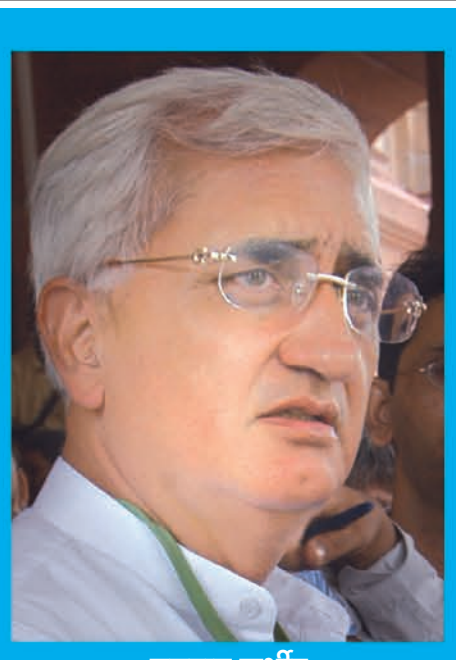

सलमान ख़ुर्शीद

शशि थरूर

एस एम कृष्णा

आनंद शर्मा

श्रीकांत जेना

सोनिया जी, अब अपने मंत्रिमंडल पर नज़र डालिए

बीनू संदल

केंद्र में नई सरकार में शामिल 79 मंत्रियों के मंत्रालयों की घोषणा पिछले दिनों कर दी गई. यह संख्या संवैधानिक सीमा से बस तीन ही कम थी, लेकिन मीरा कुमार के लोकसभा अध्यक्ष बन जाने से चार हो गई है. हमारे संविधान के मुताबिक वर्तमान में अधिक से अधिक 82 मंत्री हो सकते हैं. सवाल यह उठता है कि हरेक मंत्री को सौंपा गया मंत्रालय आख़िर कितना जायज़ है? दूसरे, क्या राज्यों का असमान प्रतिनिधित्व आगे किसी समस्या को जन्म नहीं देगा? तीसरे, क्या मंत्रालयों और विभागों का यह बंटवारा कई स्तरों पर भ्रम की स्थिति पैदा नहीं करता? ये तीनों ही बिंदु परस्पर एक-दूसरे से जुड़े हैं. पहला मसला तो पहले ही कई सवालों की वजह से चर्चित हो चुका है. कई की भौंहें तन चुकी हैं. दूसरा सवाल कई को दिलजला बना चुका है. उदाहरण के लिए, कांग्रेस के सबसे अधिक सांसद आंध्र प्रदेश से आए हैं, जहां पार्टी ने राज्य की 42 में से 33 सीटें जीती हैं. इसके बावजूद, यहां से केवल एक सांसद एस जयपाल रेड्डी को ही कैबिनेट मंत्री बनाया गया.

दूसरा मज़ेदार उदाहरण उत्तर प्रदेश का है. यहां कांग्रेस ने 21 सीटें जीतकर सबको चकित कर दिया. लेकिन इस राज्य के किसी भी सांसद को कैबिनेट मंत्री नहीं बनाया गया. मेघालय में लोकसभा की केवल दो सीटें, तुरा और शिलांग हैं. तुरा सीट राकांपा के खाते में गई और कांग्रेस ने शिलांग सीट जीती. राकांपा अगाथा संगमा को मंत्री बनाने पर अड़ गई और इसी वजह से कांग्रेस को शिलांग से जीतने वाले विंसेंट पाला को भी मंत्री बनाना पड़ा. दूसरे कई राज्यों, जैसे महाराष्ट्र-जिसे आनुपातिक तौर पर ख़ासा बड़ा प्रतिनिधित्व मिला-में भी यही असमानता देखने को मिलती है. इसके लिए आंशिक तौर पर विधानसभा चुनाव की तैयारी का बहाना दिया जा सकता है. साफ-साफ दिखने वाले इस असंतुलन पर सरकार ज़ाहिर तौर पर यह सफाई दे सकती है कि हरेक राज्य से आने वाले मंत्रियों की संख्या पर अधिक मगजपच्ची नहीं करनी चाहिए, क्योंकि मंत्री तो निस्संदेह राष्ट्रीय हितों को देखने वाले होते हैं. केवल अपने राज्य का ही प्रतिनिधित्व नहीं करते. हालांकि, क्या वास्तविकता ऐसी ही है? उदारहण के लिए, रेल मंत्री ममता बनर्जी ने साफ कर दिया है कि वह अपने कर्तव्य का बेहतर निर्वहन दिल्ली के मुक़ाबले पश्चिम बंगाल से कर सकती हैं (उन्होंने अपने मंत्रालय की कमान भी दिल्ली के बजाय कोलकाता में संभाली थी). यह सच है कि उन्होंने चक्रवातीय तूफान-आइला-से होने वाले नुकसान और तबाही का हवाला दिया था, लेकिन साथ ही उन्होंने इसके भी संकेत दे दिए कि वह संभावित नंदीग्राम और सिंगुर से निपटने को भी तैयार हैं. दूसरे शब्दों में कहें तो उनका गृहराज्य उनकी प्राथमिकता सूची में सबसे ऊपर है. दूसरे मंत्रियों को उनका अनुकरण करने से भला कौन और कैसे रोक सकता है? जैसा कि हाल ही में एक विशेषज्ञ ने घोषित किया-अगर हरेक राज्य को उसका हक़ मिल भी जाए, तो मंत्रिमंडल का ढांचा ही अकुशलता को बढ़ावा देता है. कई लोगों को इसमें जगह देनी होगी और हरेक के लिए काम भी खोजना होगा.

इसकी बात हम केवल परिवहन के उदाहरण से भी कर सकते हैं. यहां रेल मंत्री, सड़क यातायात मंत्री, नौवहन मंत्री और उड्डयन मंत्री दिखते हैं, लेकिन क्या इन सबके बीच एक समन्वय और आंतरिक संबंध है, ताकि कुल मिलाकर प्रभावी और संसाधनों के समुचित उपयोग की संभावना बन सके? इसके अलावा, अगर देखें तो जयपाल रेड्डी नागरिक विकास मंत्री हैं, लेकिन वहीं कुमारी शैलजा को गृह निर्माण और शहरी ग़रीबी उन्मूलन मंत्रालय का ज़िम्मा दे दिया गया है. क्या इसका मतलब यह है कि एक मंत्री तो धनी और मध्यम वर्ग के लिए ज़िम्मेदार है, जबकि दूसरा मंत्री ग़रीबों के लिए घर बनवाने का ज़िम्मेदार?

बात अगर आनंद शर्मा की करें, तो और भी मज़ेदार स्थिति है. आनंद शर्मा वाणिज्य और उद्योग मंत्री हैं. उनके साथ ही भारी उद्योग और सार्वजनिक उद्यम मंत्री भी बनाए गए हैं (विलासराव देशमुख, और साथ ही इस्पात मंत्री वीरभद्र सिंह को भी जोड़ लें). एक कपड़ा मंत्री दयानिधि मारन तो हैं ही, इसके अलावा खाद्य प्रसंस्करण मंत्री (सुबोधकांत सहाय) भी हैं. रसायन और उर्वरक मंत्री (एम के अझागिरी) और लघु व मध्यम उद्यम मंत्री (दिनशा जे पटेल) भी हैं.

कहानी यहीं नहीं खत्म होती. यह भी बताना ज़रूरी होगा कि अमेरिका-जो हमसे काफी बड़ा देश है-में केवल एक ऊर्जा मंत्री है. अब ज़रा कल्पना कीजिए कि अगर वह अपने भारतीय समतुल्य से बात करना चाहे, तो वह क्या करेगा? क्या वह ऊर्जा मंत्री सुशील कुमार शिंदे या पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्री मुरली देवड़ा या कोयला मंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल या वैकल्पिक ऊर्जा मंत्री फ़ारूक़ अब्दुल्ला से बात करेगा? या शायद ख़ुद प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह से ही, जिन्होंने परमाणु ऊर्जा का मंत्रालय अपने पास ही रखा है? इसी तरह, अभी ऑस्ट्रेलिया में भारतीय छात्रों पर हो रहे हमलों पर कौन ध्यान देगा? विदेश मंत्री एसएम कृष्णा या प्रवासी भारतीय मंत्री वायलार रवि?

ऐसी समस्याएं और भी हैं. कांतिलाल भूरिया जनजातीय मामलों के मंत्री हैं, वहीं सलमान ख़ुर्शीद के पास अल्पसंख्यक मामलों का मंत्रालय है, तो कृष्णा तीरथ के पास महिला कल्याण का स्वतंत्र प्रभार है. अगर किसी आदिवासी क्रिश्चियन महिला के साथ कोई घटना होती है तो वह किसके अधिकार क्षेत्र में आएगा? यहां यह भी बात उठती है कि आख़िर क्रिकेट-भारत का सबसे कमाई वाला खेल-क्यों खेल मंत्रालय के अधिकार क्षेत्र में नहीं है?

विभागों के बंटवारे में भी कई सवाल हैं. शशि थरूर पहली बार मंत्री बने हैं और उन्हें विदेश राज्य मंत्री बनाया गया है, वह दो बड़ी ग़लतियां कर चुके हैं. पहली यह कि उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारियों के आधिकारिक निर्धारण से पहले ही एक सोशल नेटवर्किंग साइट-ट्विटर-पर जाकर अपनी ज़िम्मेदारियों का खुलासा कर दिया. इसके बाद उन्होंने एक टीवी कार्यक्रम में पाकिस्तान को मिल रही अमेरिकी सहायता पर बोलते हुए कह दिया कि भारत इस मामले में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा, जो कि भारत के पहले वाले रुख़ से उलट था. मुंबई हमलों और पाकिस्तानी ज़मीन से आतंकवाद की घटनाओं के बीच और नाजुक हो चुके भारत-पाक संबंधों पर उनके इस बयान से भौंहें तन गईं. कइयों ने इसे भारत नहीं संयुक्त राष्ट्र का रुख़ कहा. ग़ौरतलब है कि थरूर कई साल तक संयुक्त राष्ट्र से जुड़े रहे हैं और 2006 में उसके सर्वोच्च पद के उम्मीदवार भी रहे थे. साथ ही थरूर ने खाड़ी देशों के मामलों का कार्यभार संभाला है, लेकिन ख़बरों के अनुसार वह एक दुबई की कंपनी-अफ्रास वेंचर्स- से जुड़े हुए हैं. ऐसे में क्या यह हितों के टकराव का गंभीर मामला नहीं है? एमके अझागिरी-करुणानिधि के बड़े बेटे-रसायन और उर्वरक मंत्री नियुक्त किए गए हैं. उनकी सबसे बड़ी चुनौती ज़रूरी दवाओं को आम आदमी की पहुंच में लाना है. यह उनका सांसद और मंत्री के तौर पर पहला अनुभव है. (यहां उन दिग्गज़ों को याद करना ज़रूरी है जो सालों से मंत्री बनने की आस लगाए बैठे हैं.) ख़ैर अझागिरी का पहला

(शेष पृष्ठ 2 पर)

सभी फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

अमेरिका-जो हमसे काफी बड़ा देश है-में केवल एक ऊर्जा मंत्री है. अब ज़रा कल्पना कीजिए कि अगर वह अपने भारतीय समतुल्य से बात करना चाहे, तो वह क्या करेगा? क्या वह ऊर्जा मंत्री सुशील कुमार शिंदे या पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्री मुरली देवड़ा या कोयला मंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल या वैकल्पिक ऊर्जा मंत्री फ़ारूक़ अब्दुल्ला से बात करेगा? या शायद ख़ुद प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह से ही, जिन्होंने परमाणु ऊर्जा का मंत्रालय अपने पास ही रखा है?

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

उलटी गंगा

क्या अर्थव्यवस्था की सुधरती स्थिति निजी क्षेत्र के लोगों को सिविल सेवा में आने के नए रुख़ को उलट देगी? बाबुओं की गतिविधियों पर नज़र रखने वालों का कहना है कि इस साल के भारतीय प्रशासनिक परीक्षा में बैठने वालों की संख्या 45 फीसदी बढ़ी है. यह बढ़ोतरी तीन साल से घटते अभ्यर्थियों के उलट है. संघ लोकसेवा आयोग (यूपीएससी) के मुताबिक, पिछले साल के सवा तीन लाख के बदले इस साल साढ़े चार लाख अभ्यर्थी हैं. निजी क्षेत्रों की डगमग स्थिति को देखकर कई युवा कर्मचारी अब सिविल सेवा की ओर रुख़ कर रहे हैं. अधिकतर लोग एक सुरक्षित सरकारी नौकरी को मंदी झेलते निजी क्षेत्र में घटती कमाई और छंटनी से बेहतर विकल्प मान रहे हैं. वैसे छठे वेतन आयोग के बाद बढ़े वेतनों ने इस सेवा को और आकर्षक बना दिया है.

सरकार भी इस समय नौकरियां बांटने के मूड में है और यूपीएससी के ज़रिए नौकरियों को दोगुना कर दिया है. 2007 में यूपीएससी के ज़रिए मिलने वाली नौकरियों की जो संख्या 425

थी, वह 2008 में बढ़कर 881 हो गई. अब कॉरपोरेट प्रोफेशनल भी एक सुरक्षित नौकरी के लिए सरकारी क्षेत्र में आना चाह रहे हैं. दिलचस्प बात यह है कि अधिकतर सिविल सेवा अभ्यर्थी ग्रामीण इलाकों से हैं. भले ही मंदी ख़त्म होने से हवा का यह रुख़ दल जाए लेकिन तब तक तो बाबूगीरी चालू आहे.

नीतीश के राज में खट रहे हैं बाबू

विकास के दम पर चुनावी जीत दर्ज़ करने वाले नीतीश कुमार ने अब कामचोरों के ख़िलाफ़ पूरी सख्ती करने का फ़ैसला कर लिया है. नतीजतन कभी अपनी कामचोरी के लिए बदनाम बाबू लोग अब तय समयसीमा के अंदर काम पूरा करने के लिए ज़ोर लगाए रहते हैं. सूत्रों के अनुसार नीतीश की काम न करने वाले बाबुओं को बर्दाश्त न करने की नीति ने राज्य में एक नई कार्यसंस्कृति ला दी है. हालांकि एक सर्वे के अनुसार भारत के बाबू पूरे एशिया में सबसे ख़राब हैं.

नीतीश अपने उन मुख्यमंत्री साथियों के लिए जलन का कारण बन गए हैं जिन्हें लगता है कि उनके बाबुओं ने उन्हें निराश किया है. हालांकि मुख्य सचिव आरजे पिल्लई ख़ुद सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य, बाढ़ और ग्रामीण विकास के मुद्दों पर चल रहे कार्यों का ध्यान रखते हैं, कई जिलाधिकारियों के लिए इन योजनाओं की बाबत सीएम हाउस से सीधे कॉल आना कोई हैरत की बात नहीं है. मुख्य सचिवालय में भी

हलचल है. यह बदलाव इसलिए भी प्रभावी है क्योंकि बिहार पहले से आईएएस की कमी झेल रहा है. कुल 326 बाबुओं की जगह में से 44 केंद्रीय नियुक्ति पर हैं तो 105 पद ख़ाली हैं. क्या नीतीश इस समस्या को ख़त्म कर पाएंगे?

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

मेनन को मिलेगा इनाम

विदेश सचिव शिवशंकर मेनन को सेवानिवृत्ति के बाद विशेष कार्यभार सौंपा जा सकता है. 1972 बैच के आईएफएस अधिकारी मेनन ने अपने सेवाकाल में भारतीय-अमेरिकी परमाणु करार सहित कई चुनौती भरे कार्य पूरे किए थे. विदेश सेवा में उनका कार्यकाल इसी वर्ष जुलाई में समाप्त होने वाला है. ख़बरों में है कि उन्हें इसके बाद प्रधानमंत्री कार्यालय में कुछ विशेष कार्यभार दिया जाएगा.

रमन चले बीएसएफ

आंतरिक सुरक्षा विभाग में अपनी सेवाएं दे रहे केरल काडर के 1973 बैच के आईपीएस अधिकारी रमन श्रीवास्तव की तरक़्क़ी होने वाली है. कहा जा रहा है कि उन्हें सीमा सुरक्षा बल में डायरेक्टर जनरल बनाया जा सकता है. फ़िलहाल वह आंतरिक सुरक्षा विभाग में विशेष सचिव के पद पर कार्य कर रहे थे. पिछले कुछ वक़्त से सीमा सुरक्षा बल में डायरेक्टर जनरल पद के लिए किसी अच्छे अफसर की तलाश हो रही थी.

बढ़ेगी पारी

सरकारी कार्यालयों में फ़िलहाल बदलाव की बयार नहीं आई है. इसी सिलसिले में केंद्र में प्रतिनियुक्त कर्नाटक काडर की आईएएस अधिकारी वी. विद्यावती की नियुक्ति भी आगे बढ़ सकती है. उनका कार्यकाल इस महीने ख़त्म हो रहा है, लेकिन जिस तरह से अफसरों को सेवा विस्तार मिल रहा है, उससे उम्मीद जताई जा रही है कि उनकी प्रतिनियुक्ति भी जारी रहेगी.

सोनिया जी, अब अपने मंत्रिमंडल पर नज़र डालिए

पृष्ठ एक का शेष

काम उस दवा पॉलिसी को प्रभाव में लाना होगा जो उनके पहले के मंत्री रामविलास पासवान आम सहमति के अभाव में नहीं कर पाए. इस पॉलिसी का उद्देश्य 354 दवाओं को ज़रूरी दवाओं की राष्ट्रीय सूची में लाना और उनके मूल्य पर नियंत्रण करना है. अझागिरी की अनुभवशून्यता को देखते हुए लगता है कि उनके लिए यह काम काफी मुश्किल होगा. साथ ही उन्हें मंदी की मार झेल रहे भारतीय दवा उद्योग के हितों को भी ध्यान में रखना होगा. यहां एक और पेच है. रसायन मंत्रालय में राज्य मंत्री के तौर पर उड़ीसा के कांग्रेसी नेता श्रीकांत जेना की नियुक्ति की गई. लेकिन उन्होंने कार्यभार काफी विलंब से यानी दस जून को संभाला. इस सिलसिले में उनकी अपनी शिकायतें थीं. दरअसल, इस मंत्रालय में कैबिनेट मंत्री अझागिरी हैं जिनके नीचे काम करने को वह तैयार नहीं थे. ग़ौरतलब है कि श्रीकांत जेना केंद्र में पहले ख़ुद कैबिनेट मंत्री रह चुके हैं, जबकि अझागिरी पहली बार सांसद बनते ही कैबिनेट मंत्री बन गए. इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी ज़ाहिर कर दिया था कि वह तो शपथ ही लेना नहीं चाहते थे. प्रधानमंत्री ने अनुरोध किया था, इसलिए मान गए. पर काम तभी संभालेंगे, जब कैबिनेट मंत्री का दर्जा मिलेगा. और, कैबिनेट मंत्री का दर्जा मिलने का रास्ता मीरा कुमार के लोकसभा अध्यक्ष बनते ही साफ हो गया. जेना का अब जल संसाधन मंत्री बनना तय है.

वैसे कुछ नियुक्तियों के बारे में कुछ बोलने की ज़रूरत नहीं है. तमिल मनीला कांग्रेस के पूर्व प्रमुख जीके मूपनार के बेटे जीके वासन को इस बार कैबिनेट मंत्री बना दिया गया. दूसरी बार तमिलनाडु से राज्यसभा सांसद बने वासन को जहाजरानी मंत्रालय मिला है. पिछली सरकार में वह सांख्यिकी मंत्रालय में राज्य मंत्री थे. इस नई ज़िम्मेदारी में उन्हें भारत के बंदरगाहों की क्षमता बढ़ाने पर काम करना होगा.

चौथी बार सांसद बने कांतिलाल भूरिया पहले राज्य मंत्री थे. उन्हें उनकी वफादारी का इनाम देते हुए इस बार कैबिनेट मंत्री बना दिया गया है. पहले कृषि, उपभोक्ता मामले, खाद्य और जनवितरण के राज्य मंत्री का काम संभाल रहे भूरिया अब जनजातीय मामलों के कैबिनेट मंत्री हो गए हैं.

विलासराव देशमुख के बारे में क्या कहा जाए, जिनको भारी उद्योग और सार्वजनिक उद्यम मंत्रालय दिया गया है? जिस आदमी को 26 नवंबर के आतंकी हमले के मद्देनज़र महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री पद से हटना पड़ा, उन्हीं को अचानक ही न केवल कैबिनेट मंत्री बनाया गया, बल्कि भारी उद्योग जैसा महत्वपूर्ण मंत्रालय भी दे दिया गया. इससे आख़िर क्या संदेश मिलता है? इसके अलावा जयराम रमेश हैं, जिनको पर्यावरण और वन मंत्रालय के स्वतंत्र प्रभार वाला राज्य मंत्री बनाया गया है. उनकी रुचि ज़ाहिर तौर पर वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय या ऊर्जा मंत्रालय का राज्य मंत्री बनने में थी. जयराम 2004 में इन विभागों का ज़िम्मा संभाल चुके हैं. प्रसंगवश, यह भी बता दिया जाए कि पारदर्शिता की ख़ातिर जयराम रमेश ने अपने कमरे में लकड़ी की जगह शीशे का दरवाज़ा लगाया था, ताकि लोग उनको काम करते और उनके मुलाक़ातियों को देख सकें (उनके बाद के मंत्रियों ने ख़ैर पुरानी लकड़ी वाले दरवाज़ों को ही पसंद किया). रमेश की पृष्ठभूमि को देखते हुए अगर विचार करें तो क्या वह सकारात्मक तौर पर उद्योग, रोज़गार, और पर्यावरण व वन के बीच के महत्वपूर्ण अंतर्संबंधों को समझ पाएंगे? उदाहरण के लिए, संभावित तौर पर अपनी ज़मीन से महरूम होने वाले लोगों का विरोध इसी बात से पैदा होता है कि बारहां औद्योगिक परियोजनाएं गांव वालों को वंचित बनाती हैं. उनमें से अधिकतर ग़रीब और इसी वजह से शक्तिहीन होते हैं. उनको यह भी लगता है कि उनकी क़ीमत पर मध्यवर्ग के लिए रोज़गार का सृजन किया जा रहा है. हरेक राजनेता औद्योगिकीकरण और रोज़गार के बीच का संबंध जानता है, लेकिन कुछ ही पर्यावरण के स्तर पर इन नीतियों के परिणाम की समीक्षा कर पाते हैं. वजह केवल एक ही है कि इन मसलों पर ख़ासा समय ख़र्च होता है और कई बार इसे सुलझाने के लिए कुछ ग़ैर-लोकप्रिय फ़ैसले भी लेने होते हैं.

नतीजे के तौर पर हमारे देश में औद्योगिकीकरण लगातार सघन पूंजीवाद का रूप लेता जा रहा है, जिसमें राज्य की ताक़त व्यापारियों के साथ मिलकर आम आदमी और पर्यावरण की क़ीमत पर तथाकथित विकास करती हैं.

मंत्रियों के तौर पर सही चयन के सवाल के अलावा क्या इस समीकरण पर कोई ध्यान दिया गया है कि कैबिनेट मंत्री और राज्य मंत्रियों के बीच के संबंध कैसे होंगे? सीपी जोशी (ग्रामीण विकास और पंचायती राज मंत्री) और उनके कनिष्ठ मंत्री प्रदीप जैन (ग्रामीण विकास राज्य मंत्री) के मामले में अभी से तनाव के आसार दिख रहे हैं. ऊपर बताए गए असंतुलन तो एक बड़ी तस्वीर का छोटा-सा हिस्सा भर हैं. निस्संदेह, ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि हरेक चुनाव ही असंतुलित रहा है और कोई भी चयन बेहतर नहीं है. कई बेहतर फ़ैसले भी हुए हैं, जैसे वीरप्पा मोइली को क़ानून एवं न्याय मंत्री बनाना, सलमान ख़ुर्शीद की कंपनी मामलों और अल्पसंख्यक मामलों के राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) के तौर पर नियुक्ति और मल्लिकार्जुन खड़गे को श्रम व रोजगार मंत्री बनाना इसकी बानगी है. कुछ जाने-पहचाने नाम जैसे, प्रणव मुखर्जी, पीसी चिदंबरम और इस तरह के और भी मंत्री इसकी पुष्टि करते हैं. बावजूद इन सबके, बड़ा सवाल तो यही है कि असंतुलन आख़िर हो ही क्यों? देश और लोगों के हित में शीर्ष पर बैठे लोगों द्वारा बेहतर चयन और फ़ैसले करने की ज़रूरत है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 14, 21 जून 2009

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के - 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के -2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

नशे के बारूद पर बैठा पंजाब

संजीव पांडेय

कभी आतंकी बारूद पर बैठा पंजाब अब नशे की बारूद पर बैठा है. यह बारूद कभी भी विस्फोट कर पूरे पंजाब को निगल सकता है. हालात काफी नाज़ुक हैं, सरकार चुप बैठी है. यह खुलासा किसी और न नहीं, बल्कि पंजाब सरकार के ही समाज कल्याण विभाग ने किया है. खुलासे के मुताबिक राज्य के ग्रामीण इलाक़ों के 67 प्रतिशत परिवारों में एक व्यक्ति तो नशे का आदी हो ही चुका है. कभी हरित क्रांति का जनक रहा यह राज्य आज नशा क्रांति के क़ब्ज़े में आ चुका है. हालांकि अलकोहल एवं देसी शराब का सेवन पंजाब की संस्कृति का हिस्सा रहा है, पर पिछले दो दशकों में स्थिति काफी बदल गई है. अब शराब की जगह नए नारकोटिक और सिंथेटिक ड्रग ले रहे हैं, जो एक ख़तरनाक संकेत हैं.

राज्य के सामाजिक सुरक्षा एवं महिला व बाल विकास विभाग के सचिव हरजीत सिंह ने नारकोटिक्स ड्रग एंड साइकोट्रोपिक सबस्टांस एक्ट-1985 के ऊपर बनाए गए एक्शन प्लान पर पंजाब व हरियाणा हाई कोर्ट में दिए गए अपने जवाब में कई गंभीर खुलासे किए हैं. दरअसल पंजाब एवं हरियाणा हाई कोर्ट ने पंजाब सरकार से इस संबंध में जवाब मांगा था. समाज कल्याण विभाग का यह खुलासा अगर सही है तो पंजाब जैसे राज्य को बर्बाद होने से कोई नहीं बचा सकता है. कभी आतंकवाद के दौर में भारी संख्या में युवाओं को खो देने वाले इस राज्य के युवा अब दूसरे ख़तरे की चपेट में आ गए हैं. यह ख़तरा इतना भयानक है कि आने वाले समय में आतंकवाद से भी ज़्यादा बुरे दौर की आशंका है. समाज कल्याण विभाग के जवाब में खुलासा किया गया है कि राज्य में परंपरागत नशे के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर सिंथेटिक ड्रग का इस्तेमाल हो रहा है. ये सिंथेटिक ड्रग राज्य की अधिकतर केमिस्ट दुकानों पर उपलब्ध हैं. राज्य का माझा इलाक़े -जिसमें अमृतसर, तरनतारन, गुरदासपुर आदि जिले आते हैं-की हालत बदतर है. इस इलाक़े के 65 प्रतिशत परिवारों में से कम से कम एक व्यक्ति नशे का आदी हो चुका है. जबकि दोआबा-जिसमें जालंधर, होशियारपुर आदि जिले आते हैं-में भी यही हाल है. यहां पर भी लगभग 65 प्रतिशत परिवारों में से कम से कम एक व्यक्ति नशे का आदी है. जबकि राज्य के मालवा इलाक़े में 64 प्रतिशत परिवारों में से एक व्यक्ति नशे का आदी है. हालांकि सबसे चौंकाने वाले तथ्य लड़कियों के बारे में हैं. राज्य में हर दस लड़कियों में से तीन नशे की आदी हैं. हॉस्टल मे रहने वाले छात्र-छात्राओं में तो हालात और ख़तरनाक हैं. जहां राज्य के 66 प्रतिशत स्कूल जाने वाले बच्चे गुटका या तंबाकू के आदी हो चुके हैं, वहीं कॉलेज जाने वाले दस में से सात छात्र किसी न किसी नशे की लत में हैं.

पंजाब के सीमावर्ती जिले नशे का मुख्य केंद्र बन गए हैं. ग्रामीण इलाक़ों में जहां सबसे ज़्यादा प्रभावित तरनतारन है, वहीं शहरी जिलों में अमृतसर अधिक प्रभावित है. ये दोनों जिले पाकिस्तान के साथ लगते हैं. अमृतसर जिले से जहां पाकिस्तान का लाहौर लगता है, वहीं तरनतारन जिले से भी पाकिस्तान के लाहौर का इलाक़ा और कसूर लगता है. इन सीमावर्ती जिलों में दोनों तरफ़ ड्रग स्मगलरों का गैंग सक्रिय है जो पाकिस्तान से भारत में नशीले पदार्थों की आपूर्ति करता है. पाकिस्तान से आने वाले विभिन्न नशीले पदार्थों में धर दबोचा. उनके पास से पांच किलो हेरोइन बरामद की गई, जिसकी क़ीमत अंतरराष्ट्रीय बाजार में पांच करोड़ रुपये थी. इस मामले में पंजाब विधानसभा के स्पीकर निर्मल सिंह कहलों का नाम भी घसीटा गया. आरोप लगाया गया कि राजिंदर सिंह असल में निर्मल सिंह कहलों के नज़दीकी हैं. हालांकि निर्मल सिंह ने इन आरोपों से इंकार कर दिया. दिलचस्प बात यह है कि राजिंदर सिंह की गिरफ़्तारी भी एक अकाली नेता के खुलासे के बाद की गई थी. फरीदकोट जिला अकाली दल के वरिष्ठ उपाध्यक्ष साधु सिंह को राजिंदर सिंह की गिरफ़्तारी से दो दिन पहले चार किलो अफीम के साथ गिरफ़्तार किया गया था. उसकी सूचना के आधार पर ही राजिंदर सिंह की गिरफ़्तारी की गई.

राज्य में हेरोइन की एक बड़ी खेप 2008 में पकड़ी गई. यह खेप 22 किलो की थी. अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में इसकी क़ीमत लगभग 22 करोड़ रुपये थी. इस खेप के साथ भी सत्ताधारी अकाली दल का नाम जुड़ा. 24 जुलाई 2008 को राजा सांसी एयरपोर्ट के पास से यूथ अकाली दल-जालंधर के महासचिव पुरुषोत्तम सोंधी को पकड़ा गया. उसके

ड्रग कॉरिडोर का बड़ा केंद्र बना पंजाब

पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान से भेजे जाने वाले नशीले पदार्थों का सबसे मुफीद रास्ता पंजाब है. वास्तव में यह पाकिस्तान-अफ़ग़ानिस्तान ड्रग कॉरिडोर का बड़ा ट्रांजिट सेंटर बन चुका है. ये नशीले पदार्थ पंजाब के रास्ते कनाडा और यूरोप तक भेजे जा रहे हैं. ईरान-इराक़ युद्ध ख़त्म होने के बाद पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान के तस्करों ने यूरोप और अमेरिका को भेजे जाने वाले नशीले पदार्थों के लिए भारत का रास्ता पकड़ा. राज्य पुलिस के अनुसार भारत के रास्ते यूरोप और अमेरिका को जाने वाले नशीले पदार्थों में से चालीस प्रतिशत पंजाब के रास्ते भेजे जा रहे है. देश में बरामद होने वाली कुल हेरोइन में से पांचवें हिस्से की बरामदगी पंजाब में ही होती है. पुलिस के अनुसार पंजाब में अटारी और वाघा बार्डर के माध्यम से नशीले पदार्थों को पंजाब में भेजा जाता है. साथ ही राज्य के अन्य सीमावर्ती जिलों में लगाए गए बाड़ों के बीच से भी तस्कर अपने माल को भेज देते हैं. यहां से ये माल हवाई जहाज, सड़क या नदी के ज़रिए बाहर भेजे जाते हैं. पुलिस सूत्रों के मुताबिक गुरदासपुर, अमृतसर, तरनतारन, फ़िरोज़पुर, कपूरथला, होशियारपुर, लुधियाना, पटियाला ट्रांजिट सेंटर के रूप में उपयोग किए जा रहे हैं. एक और बड़ा ट्रांजिट सेंटर पंजाब एवं हरियाणा की राजधानी चंडीगढ़ भी है. राज्य में हेरोइन की खेप जहां अफ़ग़ानिस्तान एवं पाकिस्तान से आ रही है, वहीं स्मैक की सप्लाई मुख्य रूप से पाकिस्तान और नेपाल से होती है. जबकि अफीम, पापी हस्क, गांजा और चरस पड़ोसी राज्य राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश से आते हैं. हालांकि स्मैक की नियमित खेप दिल्ली, मेरठ और सरदूलगढ़ (राजस्थान) से भी आती है. जिस ड्रग कॉरिडोर का खाका खींचा गया है उसमें पंजाब से कई रास्ते निकलते हैं. नशे की खेप पहले वाघा, अटारी समेत अमृतसर, तरनतारन, फ़िरोजपुर के अन्य एंट्री प्वाइंट से पंजाब में आती है. फिर यहां से दो महत्वपूर्ण रूट बनते हैं. एक रूट पंजाब से उत्तराखंड के रास्ते नेपाल को जाता है, जहां से नशीले पदार्थ यूरोप और अमेरिका भेजे जाते हैं. जबकि दूसरा महत्वपूर्ण रूट वाया दिल्ली है. इस रूट से माल मध्य प्रदेश या राजस्थान होकर मुंबई तक जाता है, जहां से आगे वह विदेशों को जाता है.

राज्य में नशे के कारण हालत ख़राब : डीजीपी विर्क

पंजाब के पूर्व डीजीपी और वर्तमान में महाराष्ट्र के डीजीपी एसएस विर्क के अनुसार इस समय पंजाब बुरी तरह नशे की गिरफ़्त में है. गांवों में भी नशे का सेवन काफी बढ़ गया है. इसे तत्काल रोकने की ज़रूरत है. इसके लिए ड्रग पैडलरों पर ज़ोरदार कार्रवाई होनी चाहिए. विर्क के अनुसार पूर्व मुख्यमंत्री अमरिंदर सिंह के कार्यकाल में उन्होंने 12 बड़े ड्रग पैडलरों के डिटेंशन आर्डर दिए थे. विर्क कहते हैं कि सीमावर्ती राज्य होने के कारण मादक पदार्थों की तस्करी एक बड़ी समस्या है और स्थानीय जनसंख्या में इसकी बढ़ती लत दूसरी बड़ी समस्या है. सरकार को नशे से बचाव के लिए युद्धस्तर पर काम करना चाहिए, नहीं तो आने वाले समय में हालात और ख़राब होंगे.

बाहरी मज़दूर भी चपेट में

बिहार और उत्तर प्रदेश से आने वाले मज़दूरों को भी स्थानीय किसान नशा देते हैं. उन्हें चाय में नशा दिया जाता है, ताकि रोपाई के समय में वे ज़्यादा से ज़्यादा काम करें. राज्य के मालवा बेल्ट में धान की खेती अधिक है और काफी मज़दूर बिहार और उत्तर प्रदेश से बुआई के लिए यहां आते हैं.

सामान्य रूप से किसान उन्हें अफीम या भुक्की का आदी बना देते हैं. जो मज़दूर अफीम का आदी नहीं होता, उसे चाय में मिलाकर पिला दिया जाता है. कुछ लोगों को विश्वास में लेकर अफीम खिलाई जाती है. इससे मज़दूरों में काम करने की क्षमता बढ़ जाती है और वे लगातार 12 से 15 घंटे तक काम करते हैं.

चुनाव में भुक्की-चूरा पोस्त, अफीम का कारोबार बढ़ा

राज्य में विधानसभा और लोकसभा चुनावों के दौरान भुक्की, चूरा पोस्त और अफीम का कारोबार ख़ूब बढ़ता है. ये तमाम मादक पदार्थ मतदाताओं के बीच राजनीतिक दलों द्वारा बांटे जाते हैं. चुनावों के दौरान सामान्य दिनों के मुक़ाबले एनडीपीएस एक्ट के तहत मामले कम दर्ज़ होते हैं. राजनीतिक दलों के दबाव में पुलिस मामला दर्ज़ ही नहीं करती है. सामान्य तौर पर पुलिस वालों के संबंध सारे राजनीतिक दलों से अच्छे होते हैं, बल्कि उन्हें अच्छे रखने पड़ते हैं. ऐसे में वोटरों तक इसकी आपूर्ति में कई पुलिस वालों से भी मदद मिल जाती है. पंजाब पुलिस इंटेलिजेंस के मुताबिक हाल ही में बीते लोकसभा चुनाव में एक क्षेत्र में औसतन चार ट्रक भुक्की-चूरा पोस्त की आपूर्ति हुई. इनमें पटियाला, संगरूर, भटिंडा, फ़रीदकोट और फ़िरोजपुर लोकसभा क्षेत्र शामिल हैं. ये क्षेत्र राजस्थान और हरियाणा से लगते हैं जबकि अमृतसर, खडूर साहिब आदि क्षेत्रों में भुक्की और अफीम के अलावा दूसरी तरह के नशे भी बांटे गए.

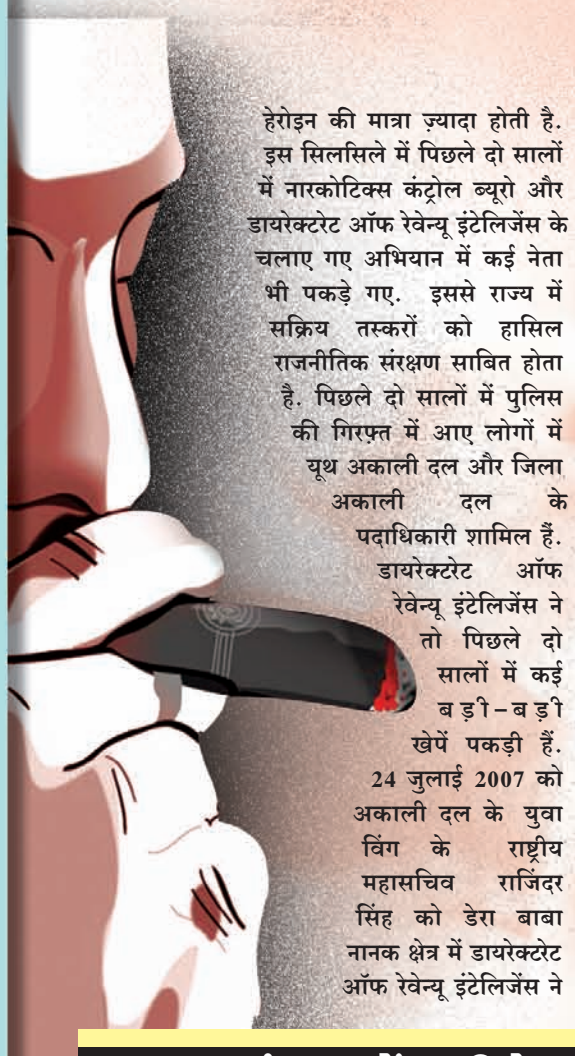

हेरोइन की मात्रा ज़्यादा होती है. इस सिलसिले में पिछले दो सालों में नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो और डायरेक्टरेट ऑफ रेवेन्यू इंटेलिजेंस के चलाए गए अभियान में कई नेता भी पकड़े गए. इससे राज्य में सक्रिय तस्करों को हासिल राजनीतिक संरक्षण साबित होता है. पिछले दो सालों में पुलिस की गिरफ़्त में आए लोगों में यूथ अकाली दल और जिला अकाली दल के पदाधिकारी शामिल हैं. डायरेक्टरेट ऑफ रेवेन्यू इंटेलिजेंस ने तो पिछले दो सालों में कई बड़ी-बड़ी खेपें पकड़ी हैं. 24 जुलाई 2007 को अकाली दल के युवा विंग के राष्ट्रीय महासचिव राजिंदर सिंह को डेरा बाबा नानक क्षेत्र में डायरेक्टरेट ऑफ रेवेन्यू इंटेलिजेंस ने

पुलिस भी नशे की हुई शिकार!

पंजाब नशीले पदार्थ की तस्करी का केंद्र ही नहीं बना है, बल्कि यहां की पुलिस भी इसका शिकार हो चुकी है. जहां नशे के परंपरागत तरीक़े का सेवन राज्य पुलिस में महामारी के रूप में बढ़ी है, वहीं सिंथेटिक ड्रग का सेवन भी बढ़ा है. राज्य पुलिस के एक वरिष्ठ अधिकारी ने नाम नहीं छापने की शर्त पर बताया कि इसके शिकारों में अधिकारी स्तर से लेकर कांस्टेबल तक है. नशा करने वाले अधिकारी जहां अफीम के गोले लेते है वहीं कांस्टेबल और हवलदार पापी हस्क, अफीम जैसे मादक पदार्थों का सेवन करते है. एक अधिकारी ने अपने कार्यकाल में अपनी एक बटालियन का सर्वे किया. उस सर्वे के आधार पर अधिकारी ने बताया कि पूरी बटालियन के साठ प्रतिशत जवान नशे के शिकार थे. उस बटालियन में कुल 1800 जवान थे, जिनमें से 1200 जवान नशे के शिकार थे. जब बटालियन के प्रमुख के रूप में अधिकारी की नियुक्ति हुई तो तीन महीने के अंदर पांच जवानों की मौत हुई. ये सभी कमांडो नशा करते थे. इसके बाद उपरोक्त अधिकारी ने पूरी बटालियन का सर्वे किया, जिसमें चौकाने वाली बातें सामने आईं. अधिकारी के अनुसार काफी संख्या में जवान भुक्की के आदी थे. वे मुट्ठी में भरकर मुंह में डालते थे और पानी पी जाते थे. साथ ही चाय में भी भुक्की उबालकर पीने की लत सामने आई. नशे करने वाले कई जवानों में देखा गया कि वे सादे पानी में उबालकर इसका सेवन करते थे. इसे वे पूरे दिन जब ज़रूरत पड़ती थी, घूंट के हिसाब से मुंह में डाल लेते थे. इसके अलावा प्राक्सी-वोन, ब्रुफेन, कंपोज आदि का सेवन भी जवान ख़ूब कर रहे थे. ये यहां की मेडिकल दुकानों पर आसानी से उपलब्ध होती हैं. अधिकारी के अनुसार मॉरफिन इंजेक्शन लेने की आदत भी कई जवानों में लग चुकी है. एक अन्य अधिकारी के अनुसार मॉरफिन इंजेक्शन के कारण एचआईवी और हेपेटाइटिस-बी और सी का ख़तरा भी जवानों में बढ़ गया है. सीमाई जिले अमृतसर और तरनतारन में जवानों में हेपेटाइटिस के 30 मामले अब तक मिल चुके हैं. ऐसे जवान इंजेक्शन से ड्रग लेते थे. अब पुलिस उनके लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर रही है. साथ ही पुलिस में जिला स्तर पर एक नोडल अधिकारी की नियुक्ति हो रही है, जो हेपेटाइटिस और एचआईवी से बचाव के लिए योजना बनाएंगे.

पंजाब में नशीले पदार्थों की बरामदगी

	हेरोइन	स्मैक	भुक्की-चूरापोस्त	अफीम	चरस
2006	53 किलो	32 किलो	891 क्विंटल	502 किलो	98 किलो
2007	111 किलो	32 किलो	887 क्विंटल	492 किलो	96 किलो
2008	260 किलो	55 किलो	588 क्विंटल	500 किलो	110 किलो

पास से 22 किलो हेरोइन बरामद हुई. ये हेरोइन कनाडा भेजी जा रही थी. इसे भी डायक्टरेट ऑफ रेवेन्यू इंटेलिजेंस ने पकड़ा. हालांकि राज्य के कई नेताओं पर तस्करी के आरोप लगते रहे हैं और कुछ पकड़े भी गए हैं, पर सच्चाई यह है कि राज्य पुलिस के कुछ अधिकारियों पर भी नशे के तस्करों को संरक्षण देने के आरोप लगते रहे हैं.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

महिला आरक्षण बिल पर बाज़ी मारने की तैयारी

भारत में महिलाओं की तक़दीर ने करवट ले ली है. अगर हमारे कर्णधारों के बयान पर यक़ीन करें तो विधायिका में महिलाओं के लिए 33 फीसदी सीटें आरक्षित करने वाले विधेयक के दिन बहुरने वाले हैं. यह ऐसा बिल है, जो लंबे समय से अटका पड़ा है. कतिपय विरोधों के बावजूद इस पर व्यापक सहमति बन चुकी है. सरकार की कोशिश है कि उच्चतम स्तर की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी हो, जिससे देश में बेहतर शासन सुनिश्चित हो सके. राष्ट्रपति के अभिभाषण के मद्देनज़र अगर महिला आरक्षण लागू हो जाता है तो देश की राजनीति का पूरा चेहरा ही बदल जाएगा. वैसे देखा जाए तो न सिर्फ़ भारत में बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी इस दृष्टि से महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं है. विश्व की आधी आबादी होने के बाद भी समूची संसदीय प्रणाली में महिलाओं की भागीदारी सिर्फ़ 18.4 फीसदी ही है. जबकि दुनिया में संसदीय प्रणाली वाले देशों की संख्या 187 है. इनमें से केवल 63 में द्विसदनीय व्यवस्था है. इनमें से भी सिर्फ़ 32 देशों में ही महिलाओं को वहां की संसद या उसके किसी सदन का अध्यक्ष बनने का अधिकार मिल सका है. इंटर पार्लियामेंट्री यूनियन के मुताबिक 30 अप्रैल 2009 तक के आंकड़ों के अनुसार संसदीय व्यवस्था वाले देशों में सांसदों की कुल संख्या 44 हज़ार 113 थी. इनमें महिला सांसदों की संख्या महज़ 8 हज़ार 112 थी. पुरुष सांसदों की संख्या महिलाओं की तुलना में क़रीब छह गुणा यानी 36 हज़ार 001 थी. वैसे संसदीय व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी के लिहाज़ से वर्ष 2008 ख़ुशगवार रहा. इस वर्ष दुनिया में महिलाओं की भागीदारी सर्वाधिक रही. हालांकि, फिर भी यह आंकड़ा 18 फीसदी के आसपास ही रहा. इस लिहाज़ से देखा जाए तो महिलाओं की दयनीय तस्वीर ही उभर कर सामने आती है. दुनिया की एक चौथाई संसदों में महिला सदस्यों की संख्या 10 प्रतिशत भी नहीं है. सऊदी अरब में तो महिलाओं को वोट डालने का हक़ तक नहीं है. अरब देशों में महिलाओं ने औसतन नौ फीसदी संसदीय सीटें जीती हैं लेकिन क़तर, सऊदी अरब और माइक्रोनेशिया (आठ द्वीपीय देशों का समूह) के इतिहास में कभी कोई महिला सांसद नहीं रही. संयुक्त राष्ट्र के मानकों के मुताबिक विभिन्न संसदों में महिलाओं की भागीदारी 30 फीसदी होनी ही चाहिए. हद तो यह है कि लोकतंत्र के सबसे बड़े पैरोकार और मानवाधिकारों का ठेकेदार

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

बनने वाले अमेरिका में कांग्रेस के दोनों सदनों–सीनेट और प्रतिनिधि सभा–में सर्वाधिक 17–17 महिला सांसद ही चुनी गईं. महिला सांसदों के मामले में फ्रांस का स्थान आठवां है. यहां 50 प्रतिशत महिला मंत्री हैं. अमेरिका और इंग्लैंड में महिला जनप्रतिनिधि 20 फीसदी हैं. पाकिस्तान में 22 प्रतिशत और हमारे देश में सिर्फ़ 10 प्रतिशत. रूस, चीन, फिलीपींस, कोरिया आदि देशों में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण पहले से ही लागू है. नार्वे, स्वीडन, फ्रांस, जर्मनी आदि में राजनीतिक दलों ने महिलाओं के लिए इतने ही स्थान आरक्षित कर रखे हैं.

अगर भारत में आरक्षण लागू हो जाता है तो भारतीय संसद में 248 और राज्य विधानसभाओं में 1223 महिलाएं आ जाएंगी. इसका मतलब यह कि 1471 क्षेत्रों से पुरुषों का वर्चस्व ख़त्म हो जाएगा.

विश्व की आधी आबादी होने के बाद भी समूची संसदीय प्रणाली में महिलाओं की भागीदारी सिर्फ़ 18.4 फीसदी ही है. जबकि दुनिया में संसदीय प्रणाली वाले देशों की संख्या 187 है.

देश के कुल 790 सांसदों में फ़िलहाल 81 महिलाएं ही शामिल हैं. पिछली बार इनकी संख्या 72 थी. वहीं 543 सदस्यों वाली लोकसभा में इस बार सिर्फ़ 59 महिलाएं हैं. 22 महिलाएं राज्यसभा की सदस्य हैं. यही हालत राज्यों की विधानसभाओं की है, जहां 4072 विधायकों में महिलाओं की संख्या 300 है. महिला आरक्षण का प्रावधान लागू हो जाने से राज्यों की राजनीति पर भी गहरा असर पड़ेगा. इस आरक्षण के कारण लगभग 923 पुरुष विधानसभा पहुंच ही नहीं पाएंगे. इनकी जगहों पर महिलाएं क़ब्ज़ा कर लेंगी. देश की पहली लोकसभा में चुन कर आई महिला सांसदों का प्रतिशत महज़ चार फीसदी था और आज भी यह केवल नौ फीसदी के आसपास है. महिलाओं के लिए विधायिका में 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने का मुद्दा अरसे से महज़ ख़यालों में ही है. देश में इसके समर्थक विभिन्न राजनीतिक दलों में ही इसको लेकर जबरदस्त अंतर्विरोध है, जिसके कारण यह अभी तक साकार नहीं हो सका. इसके समर्थन और विरोध में अलग–अलग तर्क हैं. समर्थकों का कहना है कि विधायिका में महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान होने से देश की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बढ़ेगी और सामाजिक परिवर्तन का सपना साकार हो पाएगा. विरोध करने वालों की दलील है कि आरक्षण के मौजूदा स्वरूप से सिर्फ़ उच्च वर्ग की महिलाओं को ही फ़ायदा पहुंचेगा, क्योंकि शिक्षा का स्तर समान न होने से कमज़ोर वर्ग की महिलाएं इससे महरूम रह जाएंगी. इसीलिए वे आरक्षण के भीतर अलग कोटे की मांग कर रहे हैं. जद–यू अध्यक्ष शरद यादव, समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष मुलायम सिंह यादव, राजद अध्यक्ष लालू प्रसाद यादव और भारतीय जनशक्ति पार्टी की अध्यक्ष उमा भारती आरक्षण के मौजूदा स्वरूप के हक़ में कतई नहीं हैं. उनकी मांग है कि आरक्षण के इस मसौदे में दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं के लिए अलग से कोटा होना ही चाहिए. हालांकि महिला आरक्षण बिल को पारित कराने की तैयारी पिछले 13 सालों से चल रही है. 12 सितंबर 1996 को पहली बार एचडी देवगौड़ा सरकार ने लोकसभा में विधेयक को पेश किया. उस वक़्त भी इसके पक्ष–विपक्ष में बेहद शोर–शराबा हुआ था. यहां तक कि सरकार के समर्थक दलों तक को यह विधेयक बेहद नागवार गुज़रा था. फिर 11वीं लोकसभा के भंग होने के साथ ही यह विधेयक भी अधर में ही लटका रह गया. दिसंबर 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने 84 वें संविधान संशोधन बिल के साथ दोबारा इसे पेश किया. 12वीं लोकसभा भंग होने के साथ यह बिल फिर लटक गया. 23 दिसंबर 1999 को लोकसभा में महिला आरक्षण बिल तीसरी बार पेश हुआ, लेकिन इस बार भी राजनीतिक दलों के बीच आम सहमति नहीं बन पाई और यह बिल पारित नहीं हो सका. मई 2003 में एनडीए सरकार की महिला आरक्षण बिल लाने की कोशिश एक बार फिर नाकाम हुई. 6 मई 2008 को यह बिल राज्यसभा में पहली बार पेश किया गया. जिस पर अभी तक आम राय नहीं बन सकी है. फिलहाल यह विधेयक राज्यसभा की स्थाई समिति के विचाराधीन है.

रूबी अरुण

ruby.chauthiduniya@gmail.com

भीड़ से डर लग रहा है वामपंथियों को

■ आइला प्रभावित इलाक़ों में राहत नहीं पहुंचने से उफना आक्रोश

विमल राय

वे दृश्य किसी के लिए मनोरंजक थे, तो किसी का गुमान पापड़ की तरह चूर–चूर कर देने वाले. 33 सालों से राज कर रहे वामपंथियों ने शायद इसकी कल्पना न की होगी. 25 मई को राज्य में आए चक्रवाती तूफान आइला के बाद भूखे–प्यासे कई रातें गुज़ार देने वाले पीड़ित समझ नहीं पा रहे हैं कि 33 साल पहले क्या उन्होंने ही ऐसी संवेदनहीन सरकार को चुना था? चक्रवात के आठ–दस दिन बाद तक लाखों लोगों तक राहत सामग्री पहुंचने और उसके वितरण में राजनीतिक भेदभाव के आरोपों के बीच वामपंथियों की दुर्गति के दृश्य चर्चा के विषय बने हुए हैं.

दो जून को उत्तर 24 परगना के हिंगलगंज में लोगों ने वहां के विधायक गोपाल गायन को पकड़कर कीचड़ में टहलाया. वह तूफ़ान के नौ दिन बाद अपनी जनता का हाल–चाल पूछने गए थे. नाराज़ लोगों के हाथों में झाड़ू व चप्पल भी थे. हालात बेहद ख़तरनाक थे. एक ऐतिहासिक अपमान वाली वारदात हो सकती थी. आख़िर में माकपा वालों के हाथ–पैर जोड़ने के बाद लोगों ने विधायक जी को सिर व कुर्ते पर कीचड़ पोतकर छोड़ दिया. इसी जगह कुछ देर बाद एक विद्यालय में चल रहे राहत शिविर में मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य पहुंचे तो लोगों ने 32 साल के विकास का ब्यौरा मांग दिया. मुख्यमंत्री सफाई देने लगे और लोगों ने उन्हें झिड़क दिया. सारे मंत्री–संतरी बगलें झांकने लगे. लोग पूछ रहे थे कि बगल की नदी ने जो कहर बरपाया है, उस पर बांध कब बनेगा? अभी 31 मई को मुख्यमंत्री गोसाबा इलाक़े में थे. कमरे में बैठा एक *सर्वहारा* जब कुछ ज़्यादा नाराज़ हो गया तो मुख्यमंत्री बिफर उठे और कहा, अगर तुमने मुंह बंद नहीं किया तो मैं कमरे से बाहर निकलवा दूंगा. हालांकि बाद में जनता ने गुस्सा बीडीओ अमिय भूषण चक्रवर्ती पर निकाला और उनके कपड़े फाड़ दिए. एयरकंडीशंड वाम दुर्ग में झक सफेद धोती–कुर्ता पहनकर विराजमान रहने वाले मुख्यमंत्री कीचड़ व पसीने की उमस भरे राहत शिविरों के दौरे कर जनता को दिलासा दे रहे हैं, पर ऐसा लगता है कि कुछ देर हो गई है.

जनता के आक्रोश से प्रशासन कितना घबराया हुआ है, इसकी मिसाल पहली जून को दक्षिण 24 परगना जिले में बासंती में देखने को मिली, जब अधिकारियों ने राहत कार्य में लगे मज़दूरों को प्रखंड कार्यालय में लगे एक कमरे में बंद कर दिया और उन्हें मुख्यमंत्री के वापस लौटने के बाद ही बाहर निकाला. हालांकि प्रशासन का तर्क था कि मुख्यमंत्री की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए ऐसा किया गया. राज्य के मानवाधिकार संगठनों ने इस करतूत की निंदा की. यहां तक कि राज्य मानवाधिकार आयोग के कार्यकारी अध्यक्ष एन. सी. सील ने कहा कि अगर इस संबंध में रिपोर्ट दर्ज़ कराई जाती है तो वह ज़रूर कार्रवाई करेंगे. सवाल उठता है कि क्या अधिकारियों को डर था कि मुख्यमंत्री राहत बंटवारे की गति के बारे में न पूछ दें? कैसी विडंबना है कि एक समय अपनी जनसभाओं में ज़्यादा से ज़्यादा भीड़ देखकर ख़ुश होने वाले माकपा नेताओं को अब भीड़ से डर लगने लगा है.

दक्षिण 24 परगना के सुंदरवन के 14 ग्राम पंचायतों में से 12 पंचायत बुरी तरह तबाह हैं. 50 हज़ार घर टूट गए हैं और क़रीब ढाई लाख लोग खुले आसमान के नीचे आ गए हैं. बंगाल में धान काटकर फिर धान ही बोया जाता है और चक्रवात से लाखों हेक्टेयर में लगी फ़सल तो डूब ही गई है, घरों में रखा धान भी पानी से सड़ गया. लोगों के सामने पूरे साल के आहार की चिंता है. कृषि वैज्ञानिकों का तो यहां तक मानना है कि चक्रवात प्रभावित इलाक़ों में भूमि की उर्वरता फिर से बहाल करने में भी कुछ समय लग जाएगा. धीरे–धीरे पानी उतर रहा है और इसी के साथ बीमारियों का प्रकोप भी बढ़ रहा है. एक मोटे प्रशासनिक अनुमान में बताया गया है कि केवल गोसाबा में ही 80 हज़ार नलकूप पानी में डूबे हुए हैं. प्रभावित इलाक़े के लोगों को भोजन, पानी और दवा की काफी ज़रूरत है. हालांकि दक्षिण 24 परगना के लिए सरकार ने सेना के 20 मेडिकल दल भेजे हैं. 25 मई को आए तूफ़ान के बाद तीन जून को सेना के डॉक्टरों, इंजीनियरों, नौसेना के जहाजों व वायुसेना के विमानों को अलर्ट किया गया. यानी सरकार सात दिन तक नुकसान प्रभावित इलाक़ों का जायज़ा तक नहीं ले पाई थी. जनता के आक्रोश और बदनामी के बाद अब सरकार चेत गई है और युद्ध स्तर पर राहत चलाने का भरोसा दे रही है.

सुंदरवन व आसपास के इलाक़ों में आइला के घाव पर राहत में भेदभाव के आरोप नमक समान हैं. राज्य में राहत की राजनीति तेज़ हो गई है. दिल्ली में मंत्रिमंडल की पहली बैठक में ही ममता बनर्जी ने आपदा राहत के बारे में राजीव गांधी के फार्मूले–पीएम टू डीएम–का हवाला दिया. उनका सुझाव इन आशंकाओं को लेकर आया कि वाममोर्चा सरकार राहत का उपयोग सही तरीक़े से नहीं करेगी. हालांकि राज्य सरकार ने इसका तीखा विरोध किया और अब तक की परंपरा के हिसाब से ही राहत बंट रहा है. वैसे प्वाइंट ज़ीरो से शिकायतें लगातार आ रही हैं. बाली पंचायत पर आरएसपी का क़ब्ज़ा है, जहां तृणमूल समर्थक भेदभाव की शिकायत कर रहे हैं. यह इलाक़ा जयनगर संसदीय क्षेत्र में आता है, जहां से इस बार तणमूल समर्थित एसयूसीआई को जीत मिली है. मथुरापुर सीट भी ममता ने वामपंथियों से छीनी है और इसका एक बड़ा इलाक़ा भी आइला की चपेट में है. वैसे, भेदभाव के आरोपों से प्रशासन व वाममोर्चा के नुमांइदे इंकार कर रहे हैं, पर धुआं उठ रहा है तो समझा जा सकता है कि आग लगी है. सप्ताह में पांच दिन बंगाल में रहने वाले अपने फार्मूले पर अमल करते हुए ममता व उनके कुछ मंत्री आइला प्रभावित इलाक़ों में दौड़ लगा रहे हैं. ममता ने रेलवे के ज़रिए भी कुछ राहत सामग्री भिजवाई है. सुंदरवन के दुर्गम इलाक़े में राहत पहुंचाने में कुछ दिक़्क़तें भी हैं, क्योंकि ज़्यादातर इलाक़ों में नौकाओं के ज़रिए ही जाया जा सकता है. सड़क जैसी बुनियादी सुविधा का अभाव है, तो इसके लिए वाममोर्चा सरकार ही ज़िम्मेदार है. गोसाबा के कई इलाक़ों में नौका से राहत सामग्री उतार कर रिक्शा–वैन से भेजी जा रही है, क्योंकि मिनी ट्रकों का रास्ता नहीं है. इसे एक महज़ संयोग कहेंगे कि राज्य में चुनावी तूफ़ान से घायल वामपंथी अपनी चोट सहला ही रहे थे कि राज्य में आइला का कहर बरप गया. राहत वितरण की लचर व्यवस्था व भेदभाव के आरोपों को देखते हुए सरकार अगर अब भी नहीं चेती तो 2011 का विधानसभा चुनाव बहुत दूर नहीं है.

जनता के आक्रोश से प्रशासन कितना घबराया हुआ है, इसकी मिसाल पहली जून को दक्षिण 24 परगना जिले में बासंती में देखने को मिली, जब अधिकारियों ने राहत कार्य में लगे मज़दूरों को प्रखंड कार्यालय में लगे एक कमरे में बंद कर दिया और उन्हें मुख्यमंत्री के वापस लौटने के बाद ही बाहर निकाला.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

अगले सौ दिनों में क्या करेगी सरकार

मनीष कुमार

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने अगले सौ दिनों के अपने एजेंडे का ऐलान कर दिया है. इससे वह जताना चाहते हैं कि वादों को पूरा करने में ढिलाई बर्दाश्त नहीं होगी. वह अपनी सरकार को और क्षमतावान, असरदार और तेज़ बनाने की कोशिश में हैं. इसलिए हर तीन महीने के बाद मंत्रालयों के कामकाज की समीक्षा करने का भी फ़ैसला लिया गया है. सरकार ने यह साफ कर दिया है कि आंतरिक सुरक्षा को मज़बूत करना, अर्थव्यवस्था में तेज़ी से सुधार लाना और रोज़गार के मौके बढ़ाना ही इस बार की प्राथमिकता होगी. मनमोहन सिंह सरकार ने 100 दिनों के लक्ष्य की घोषणा करके यह साबित किया है कि पिछली बार की तरह वह इस बार एक जवाबदेह सरकार देने की प्रयास कर रहे हैं.

प्रणव मुखर्जी

केंद्र सरकार का सबसे पहला फ़ैसला महिला आरक्षण को लेकर है. राष्ट्रपति के अभिभाषण के ज़रिए सरकार ने साफ कर दिया है कि 100 दिनों में संसद और विधानसभाओं में महिला आरक्षण की दिशा में क़दम उठाया जाएगा. केंद्र सरकार की नौकरियों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए संगठित प्रयास किए जाएंगे. महिला केंद्रित कार्यक्रमों को मिशन के रूप में लागू करने के लिए सशक्तीकरण पर राष्ट्रीय मिशन शुरू करने की योजना है. हालांकि लोकसभा में सरकार को शरद यादव ने पहला झटका तब दिया, जब उन्होंने यह धमकी दे दी कि अगर महिला आरक्षण बिल मौजूदा रूप में पारित किया गया तो वह ज़हर खा कर जान दे देंगे. सोचने वाली बात है कि उनकी ही पार्टी की सरकार ने बिहार में पंचायत स्तर पर महिलाओं को 50 फीसदी आरक्षण देने की शुरुआत की है. दरअसल शरद यादव महिला आरक्षण के ख़िलाफ़ नहीं हैं. उनकी आपत्ति इस बात को लेकर है कि मौजूदा स्वरूप में आरक्षण का फ़ायदा सिर्फ़ ऊंची जाति की महिलाओं को मिलेगा. वह चाहते हैं कि इस आरक्षण में दलित और पिछड़ी जातियों की महिलाओं के लिए भी कोटा निर्धारित हो. लालू यादव और मुलायम सिंह यादव की पार्टी ने भी महिला आरक्षण बिल का विरोध किया है. इन दोनों का कहना है कि यह क्षेत्रीय दलों को ख़त्म करने की साज़िश है. इन लोगों की बातों में भी दम है. इस पर गहन विचार करने की ज़रूरत है.

सी पी जोशी

पर्यावरण के क्षेत्र में सरकार ने नदियों की सफाई से शुरुआत करने का फ़ैसला किया है. अगले 100 दिनों में गंगा से शुरुआत कर अन्य नदियों की सफाई और सौंदर्यीकरण के लिए सरकार ठोस क़दम उठाएगी. गंगा के अस्तित्व पर सवाल उठ रहे हैं. यह सवाल भी उठता है कि सरकार को यह चिंता इतनी देर से क्यों हुई, जब यह भविष्यवाणी की जा रही है कि 2030 तक गंगा का पानी सूख जाएगा. राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री बनने के बाद सबसे पहला बड़ा निर्णय यही लिया था कि गंगा नदी को कैसे साफ बनाया जाए. इसके लिए उन्होंने 1984 में गंगा एक्शन प्लान की घोषणा की थी. इस कार्ययोजना में सरकार के साथ जनभागीदारी को बढ़ावा देकर गंगा को बचाने की मुहिम शुरू की गई थी. लेकिन आज गंगा पहले से भी ख़तरनाक स्थिति में पहुंच गई है. पर्यावरण की ही बात है तो पिछली बार से ही प्रधानमंत्री की देखरेख में बाघों को बचाने का प्राधिकरण काम कर रहा है. क्या हुआ? कितने बाघ बचे? यह बात सच है कि प्रधानमंत्री कार्यालय का सीधा हस्तक्षेप रहने से प्राधिकरण उतना लापरवाह नहीं हो पाएगा जैसा कि आमतौर पर कोई सरकारी विभाग हो जाता है. फिर भी राष्ट्रीय नदी की राजनीतिक घोषणा से आगे निकलकर बहुत कुछ किए जाने की ज़रूरत है. अब मनमोहन सिंह की सरकार अगले सौ दिनों में क्या करती है, यह देखना बाक़ी है.

सौ दिनों के एजेंडे को देखकर यह लगता है कि मनमोहन सिंह एक जबावदेह सरकार देना चाहते हैं. अधिकारियों और मंत्रालयों की ज़िम्मेदारी तय करना चाहते हैं. यही वजह है कि सरकार ने अगले सौ दिनों में जनता को सूचनाएं मुहैया कराने के लिए सार्वजनिक डाटा नीति, क़ानून में संशोधन कर सूचना के अधिकार को सुदृढ़ बनाने, राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम की पारदर्शिता और जनता के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए सामाजिक लेखा परीक्षा लागू करने का ऐलान किया है. जनता के प्रति जवाबदेही बढ़ाने के लिए योजना आयोग की ओर से एक स्वतंत्र मूल्यांकन कार्यालय की स्थापना करने की भी घोषणा हुई है. सरकार में नियमित आधार पर कार्य निष्पादन, देखभाल और मूल्यांकन के लिए तंत्र स्थापित किया जाएगा. सरकार ने यह भी घोषणा की है कि जनता को रिपोर्ट शीर्षक के अंतर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, पर्यावरण और अवसंरचना पर पांच वार्षिक रिपोर्ट पेश की जाएगी. प्रधानमंत्री की मंशा साफ है. वह एक स्वच्छ और भ्रष्टाचारमुक्त सरकार देने के पक्ष में नज़र आते हैं. सरकार की इन घोषणाओं पर अगर सिर्फ़ पहल भी हुई तो सरकारी तंत्र में कई सकारात्मक बदलाव देखने को मिलेंगे. जनता को अवश्य राहत मिलेगी. लोगों का लोकतंत्र पर विश्वास बढ़ेगा.

केंद्र सरकार का सबसे पहला फ़ैसला महिला आरक्षण को लेकर है. राष्ट्रपति के अभिभाषण के ज़रिए सरकार ने साफ कर दिया है कि 100 दिनों में संसद और विधानसभाओं में महिला आरक्षण की दिशा में क़दम उठाया जाएगा. केंद्र सरकार की नौकरियों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए संगठित प्रयास किए जाएंगे. महिला केंद्रित कार्यक्रमों को मिशन के रूप में लागू करने के लिए सशक्तीकरण पर राष्ट्रीय मिशन शुरू करने की योजना है.

निजीकरण और उदारीकरण के पक्षधर प्रधानमंत्री की योजनाओं में ग्रामीण इलाक़ों के लिए भी बहुत कुछ है. प्रधानमंत्री के सौ दिनों की योजना में गांवों को मुख्यधारा से जोड़ने और ग्रामीणों के विकास के लिए कई घोषणाएं हैं. इसमें सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम में 100 दिनों के काम के लिए औसत मज़दूरी 80 की बजाए 100 रुपये रोज़ करने की है. सरकार का ज़ोर ग्रामीण इलाक़ों को ब्रांडबैंड नेटवर्क से जोड़ने पर भी है. इसलिए यह काम भी जल्द शुरू होगा, ताकि इसे तीन साल में पूरा किया जा सके. इसके अलावा पेट्रोलियम मंत्रालय ने गांव की औरतों के लिए राहत भरी ख़बर दी है. सरकार ने एलपीजी को गांवों तक पहुंचाने का फ़ैसला किया है. इसके कई फ़ायदे होंगे. यह सस्ता तो होगा ही, इसके अलावा महिलाओं के स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए भी अच्छा साबित होगा. अगले तीन वर्ष में सभी पंचायतों में भारत निर्माण सामान्य सेवा केंद्रों के माध्यम से इलेक्ट्रॉनिक शासन व्यवस्था शुरू की जाएगी.

सी पी जोशी

अर्थव्यवस्था में नरमी के आशंका के मद्देनज़र नई सरकार मंदी से बुरी तरह प्रभावित बुनियादी ढांचा, निर्यात, छोटे एवं मंझोले उपक्रम और आवास क्षेत्र पर ध्यान देगी, ताकि विकास की रफ्तार को रास्ते पर लाया जा सके. सरकार गोपनीय बैंक खातों में जमा ग़ैरक़ानूनी धन को वापस लाने का प्रयास करेगी और बुनियादी ढांचा क्षेत्र में निवेश का विस्तार किया जाएगा. सरकार ने यह भी संकेत दिया है कि दो-तीन सरकारी कंपनियों में तुरंत विनिवेश हो सकता है. सरकारी कंपनियों की हिस्सेदारी तो बेची जाएगी, लेकिन सरकार की हिस्सेदारी 51 फीसदी से कम नहीं होगी. एनएचपीसी और ऑयल इंडिया जैसी सरकारी कंपनियों के आईपीओ की प्रक्रिया को तेज़ करने और इंश्योरेंस सेक्टर में विदेशी निवेश की सीमा बढ़ाने पर जल्द पहल की जाएगी. सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की सूचीबद्धता के लिए समय सीमा तय करेगी. सरकार की दलील है कि शेयर बाज़ारों में सुधार हो रहा है, इसलिए हमने आईपीओ परामर्शकों के साथ बातचीत दोबारा शुरू की है, जल्द ही इस दिशा में क़दम उठाए जाएंगे. इसके अलावा, सरकार ने यह आश्वासन भी दिया है कि बुनियादी ढांचा क्षेत्र में सार्वजनिक निजी क्षेत्र की भागीदारी वाली लंबित परियोजनाओं को सौ दिनों के अंदर मंजूरी देगी. साथ ही इस क्षेत्र में नियमन प्रशासन पर ध्यान देने के अलावा इसे निवेश अनुकूल बनाया जाएगा. रेलवे, ऊर्जा, राजमार्ग, बंदरगाह, हवाई अड्डों के विकास को प्राथमिकता दी जाएगी. भारत निर्माण कार्यक्रम के दूसरे दौर में ग्रामीण बुनियादी ढांचे के विकास का लक्ष्य पहले से कहीं ज़्यादा होगा. इसके अलावा पहले चरण में शुरू की गई योजनाओं को पूरा किया जाएगा. इसके तहत गांवों में सड़क, बिजली और टेलीफोन जैसे बुनियादी ढांचों का विस्तार किया जाएगा. अगले पांच वर्ष में ग्रामीण आवास के लक्ष्य को दोगुना किया जाएगा, जिसके तहत एक करोड़ 20 लाख घरों का निर्माण किया जाएगा. ग्रामीण जलापूर्ति कार्यक्रम को 2011 तक पूरा करने का लक्ष्य रखा गया है.

विदेशी निवेश नीति में उदारता, सरकारी बैंकों के पुनर्पूंजीकरण और पेंशन क्षेत्र के लिए नियामक बनाने की घोषणा की गई. राष्ट्रपति ने बैंकिंग और बीमा क्षेत्र में संसाधन बढ़ाने की ज़रूरत को रेखांकित किया, ताकि वे बेहतर तरीक़े से समाज की जरूरत पूरी कर सकें. वित्तीय स्थिति मज़बूत करने के लिए सरकारी बैंकों का पुनर्पूंजीकरण और पेंशन क्षेत्र के नियामक के लिए क़ानून बनाया जाएगा. पीएफआरडीए विधेयक को संसद में फिर से पेश किया जाएगा.

सरकार खाद्य सुरक्षा अधिनियम के नाम से एक नया क़ानून बनाएगी, जिसके तहत ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में ग़रीबी रेखा से नीचे का प्रत्येक परिवार तीन रुपए प्रति किलोग्राम की दर से हर महीने 25 किलोग्राम चावल या गेहूं प्राप्त करने का क़ानूनन हक़दार होगा. नंदीग्राम और सिंगुर जैसी घटनाओं की पृष्ठभूमि में किसानों और कृषि पर निर्भर अन्य व्यक्तियों के अनुचित विस्थापन से रक्षा के लिए संसद में पेश भूमि अधिग्रहण अधिनियम में संशोधन बजट सत्र में पेश होगा. मानव संसाधन मंत्रालय ने अगले सौ दिनों के अंदर युनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन (यूजीसी) की मदद से ऑटोनोमस स्टेट हाईयर एजुकेशन काउंसिल का गठन करेगी. उच्च शिक्षा संस्थानों में छात्राओं के लिए 100 छात्रावास बनाए जाएंगे. देश भर में दस नए राष्ट्रीय तकनीकी संस्थान बनाए जाएंगे. सौ दिनों के अंदर ही सरकार शिक्षा सुधार जैसे सेमेस्टर सिस्टम, क्रेडिट ट्रांसफर और पाठ्यक्रम को फिर से दुहराने का काम करेगी. अगले सौ दिनों के अंदर देश भर के उन 100 जिलों में 100 नए पॉलिटेकनिक इंस्टीट्यूट खोले जाएंगे जहां अभी वे नहीं हैं. साथ ही देश भर के 20000 कॉलेजों और चार सौ से ज़्यादा विश्वविद्यालयों को ब्रॉडबैंड इंटरनेट नेटवर्क से जोड़ा जाएगा. देश से ब्रेन ड्रेन (प्रतिभा पलायन) को रोकने के लिए सरकार नई ब्रेन गेन नीति का विकास करेगी, ताकि विश्वभर की प्रतिभाओं को आकृष्ट किया जा सके. इसके तहत 11 विश्वविद्यालयों को नवाचार विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित किया जाएगा. साथ ही यशपाल समिति की सिफ़ारिश के अनुसार राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा परिषद के गठन और राष्ट्रीय ज्ञान आयोग द्वारा विनियामक संस्थाओं में सुधार की पहल की जाएगी. डाकघरों और बैंकों में खातों के माध्यम से छात्रवृत्तियों और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का प्रावधान और चरणबद्ध तरीक़े से इसे स्मार्ट कार्ड में तब्दील किया जाएगा.

इसके अलावा, राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी स्कीम, ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन और सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम जारी रहेंगे. इसके साथ ही नरेगा को अन्य कार्यक्रमों के साथ बेहतर रूप से जोड़कर भूमि उत्पादकता में सुधार के अवसर को बढ़ाया जाएगा. पारदर्शिता और जनता के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए जिला स्तर पर स्वतंत्र निगरानी और शिकायत निवारण तंत्र स्थापित किए जाएंगे.

आतंकवाद के ख़ात्मे के लिए राष्ट्रीय आतंकवादरोधी केंद्र की स्थापना की जाएगी. मनमोहन सिंह अगले सौ दिनों के अंदर आतंकवाद से निपटने के लिए निर्णायक योजना बनाएंगे. इस योजना के तहत आतंकवाद से निपटने वाले टास्क फोर्स का नेतृत्व राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार करेंगे. राष्ट्रपति ने कहा कि विद्रोह और उग्रवाद से निबटने के लिए कठोर उपाय किए जाएंगे. उन्होंने कहा कि आंतरिक सुरक्षा की चुनौतियों से निबटने के लिए सरकार द्वारा समयबद्ध तरीक़े से लागू की जाने वाली एक विस्तृत योजना तैयार की जा चुकी है. ख़ुफ़िया सूचना के कारगर आदान प्रदान के लिए बहु एजेंसी केंद्र को मज़बूत बनाया जाएगा. एकीकृत ऊर्जा पर विशेष ज़ोर देते हुए राष्ट्रपति ने कहा कि कोयला, जल, परमाणु और अक्षय ऊर्जा जैसे विभिन्न स्रोतों के ज़रिए हर साल कम से कम 13 हज़ार मेगावाट बिजली उत्पादन क्षमता बढ़ोतरी का प्रयास किया जाएगा. उन्होंने कहा कि ग्राम तथा ग्रामीण परिवारों का विद्युतीकरण करने, समग्र तकनीकी तथा वाणिज्यिक हानियों में कमी लाने के कार्य को उच्च प्राथमिकता देना जारी रहेगा. तेल और गैस अन्वेषण की गति में तेज़ी लाई जाएगी. अंतरिक्ष कार्यक्रमों के ज़रिए दूरसंचार, दूरदर्शन प्रसारण और मौसम पूर्वानुमान के अलावा, कृषि, सुदूर चिकित्सा, दूरस्थ शिक्षा और ग्रामीण ज्ञान केंद्रों को सूचना मुहैया कराकर समाज को भरपूर लाभ पहुंचाने का भरसक प्रयास किया जाएगा. राष्ट्रपति ने कहा कि पिछले पांच साल में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सरकार द्वारा शुरू की गई कई नई पहलों, जिन पर अब कार्य किया जा रहा है, को और सुदृढ़ किया जाएगा.

मुरली देवड़ा

सभी फोटो– *प्रभात पाण्डेय*

कपिल सिब्बल

राष्ट्रपति के अभिभाषण के ज़रिए सरकार ने यह साफ कर दिया कि अगले सौ दिनों में वह क्या करने वाली है. पहली बार ऐसा हुआ है कि चुनाव के तुरंत बाद सरकार ने एक लक्ष्य रखा है. इस बात के लिए सरकार को बधाई. इसमें कोई शक़ नहीं है कि अगर सरकारी तंत्र और संसाधनों को इसके लिए ईमानदारी से लगाया जाए तो यह लक्ष्य आसानी से पूरा किया जा सकता है. इस दौरान प्रधानमंत्री उन समस्याओं को भी समझ सकेंगे जो किसी योजना को पूरा करने में दिक़्क़तें पैदा करती हैं. साथ ही उन्हें उन अधिकारियों की भूमिका का जायज़ा लेने में भी मदद मिलेगी जो योजनाओं को पूरा करने में हमेशा असफल रहते हैं. ज़रूरत इस बात की है कि अगर इन लक्ष्यों को पूरा करने में सरकार विफल होती है तो उसके लिए ज़िम्मेदार लोगों को दंडित भी किया जाए. वैसे हम हर 30 दिनों के बाद अपने पाठकों को ये बताते रहेंगे कि इन लक्ष्यों में सरकार ने कितनी प्रगति की है. 100 दिनों के इस एजेंडे पर सरकार के उठाए गए क़दमों के बारे में सारी जानकारी के साथ 30 दिनों बाद हम फिर हाज़िर होंगे.

manish.chauthiduniya@gmail.com

ग़लत रणनीति के कारण बिहार में कांग्रेस का बंटाधार

सुरेंद्र किशोर

कांग्रेस ने बिहार में कभी लालू प्रसाद के कथित 'जंगल राज' का लगातार साथ देकर ग़लती की और अब वह लालू से दूर हटकर ग़लती कर रही है. अपनी ग़लतियों के कारण लगातार दुबलाती और कुम्हलाती बिहार कांग्रेस यदि अब यह समझ रही है कि वह अकेले अपने बल पर कांग्रेस को बिहार में ताक़तवर बना सकती है, तो वह इस बार भारी ग़लतफहमी में है.

अगले कुछ महीनों में राज्य में 17 विधानसभा सीटों पर उपचुनाव होने वाले हैं. इसमें कांग्रेस ज़रा अपने बल पर लड़ कर देख ले! उसको एक बार फिर अपनी वास्तविक ताक़त का अनुमान लग जाएगा. कांग्रेस कौन कहे, अभी तो राजद-लोजपा-कांग्रेस मिलकर भी बिहार में कोई चुनावी करिश्मा करने की स्थिति में नहीं हैं. हां, ये मिलकर काम करें तो देर-सवेर एक मज़बूत विपक्ष बन सकते हैं. लोकतंत्र के लिए मज़बूत विपक्ष ज़रूरी है. पर पता नहीं कांग्रेस को यह बात कब समझ में आएगी! जितनी जल्दी समझ में आ जाए, उसकी सेहत के लिए उतना ही अच्छा होगा.

फोटो- पीटीआई

कांग्रेस के महासचिव राहुल गांधी ने कहा है कि कांग्रेस उत्तर प्रदेश और बिहार पर विशेष ध्यान देगी. इससे बिहार के कांग्रेसी उत्साहित हैं. आने वाले दिनों में शायद राहुल गांधी बिहार में सक्रिय भी हों, पर यहां कांग्रेस के विकास की गुंजाइश काफी सीमित है. यहां तो कांग्रेस के अधिकांश वोट बैंक पर एनडीए का पहले ही क़ब्ज़ा हो चुका है. जब लालू-राबड़ी शासन के ख़िलाफ़ आवाज़ उठा कर कांग्रेस को अपना वोट बैंक बढ़ाने का अवसर था, तब तो वह लालू प्रसाद से गलबहियां कर रही थी. अब यदि कांग्रेस को अपनी ताक़त बिहार में भी बढ़ानी है, तो उसे लालू-पासवान के वोट बैंक की आधारशिला पर ही फ़िलहाल खड़ा होना पड़ेगा. वैसे भी कांग्रेस इस्तेमाल करो और फेंको की नीति में विश्वास करती ही रही है. कांग्रेस जब लालू-राबड़ी के जंगल राज का अंध समर्थन कर रही थी, तब वह ऐसा भाजपा-विरोध के नाम पर कर रही थी. कांग्रेस कह रही थी कि लालू प्रसाद की मदद से ही सांप्रदायिक शक्तियों को मज़बूत होने से रोका जा सकता है.

पर कांग्रेस ने इस बात को भुला दिया कि जनता के समक्ष कौन-सी समस्या अधिक बड़ी और महत्वपूर्ण है? रोजी-रोटी, क़ानून राज, सुशासन या फिर एकतरफा धर्मनिरपेक्षता का सवाल? बिहार की जनता ने इस बार भाजपा को लोकसभा की 12 सीटों पर विजयी बना दिया और कांग्रेस को दो सीटों पर समेट दिया. यानी जनता की मूलभूत समस्या को नज़रअंदाज करके सांप्रदायिकता के ख़तरे के भूत को खड़ा करना कांग्रेस के लिए कारगर नहीं रहा. अब यदि कांग्रेस को फिर से अपनी ताक़त बनानी है तो नए सिरे से अपनी रणनीतिक और राजनीतिक शैली पर पुनर्विचार करना पड़ेगा. यह काम तो राजद-लोजपा को भी करना पड़ेगा. हालांकि राजद-लोजपा के लिए ख़ुद को बदलना काफी कठिन काम है. क्या लोजपा, कांग्रेस व राजद ऐसा कर पाएंगे?

कांग्रेस को इस लोकसभा चुनाव में बिहार में मात्र 10.26 प्रतिशत मत मिले, जबकि उत्तर प्रदेश में इस बार इस दल को 18 प्रतिशत वोट मिले. पर बिहार में कांग्रेस को मिले ये मत भी खांटी व स्थायी कांग्रेसी मत नहीं माने जा सकते. इन मतों में से कुछ मत कतिपय प्रभावशाली और प्रवासी उम्मीदवारों के कारण मिले. कुछ मत दो विजयी कांग्रेसी उम्मीदवारों के अपने निजी प्रभाव वाले मतों के कारण थे. पप्पू यादव की पत्नी रंजीता और साधु यादव को जितने मत मिले, क्या किसी अन्य व्यक्ति के भी वहां कांग्रेसी उम्मीदवार रहने की स्थिति में उतने मत मिलते? कुछ ऐसे भी मत इस बार कांग्रेस को बिहार में मिले, जो उसे बिहार विधानसभा के अगले चुनाव में नहीं मिलेंगे. इसलिए कि वे मतदाता ऐसे हैं, जो एक तरफ़ तो लालू-राबड़ी को बिहार में सत्ता में आने से रोकना चाहते हैं, तो दूसरी ओर केंद्र में राहुल गांधी को मज़बूत बनाना चाहते हैं. पहले की अपेक्षा इस बार बिहार में कांग्रेस को ब्राह्मण मत कुछ अधिक मिले. अटल बिहार वाजपेयी के दृश्य से बाहर हो जाने के कारण ब्राह्मणों को राहुल गांधी में उम्मीद की किरण नज़र आई. याद रहे कि इस लोकसभा चुनाव में बिहार में कांग्रेस को ब्राह्मणों के सिर्फ़ 18 प्रतिशत मत मिले, जबकि राजग को बिहार में इस जाति के 69 प्रतिशत मत मिले. यानी अब भी बड़ी संख्या में ब्राह्मण राजग के साथ हैं. लालू प्रसाद को सत्ता में आने से रोकने के लिए गांधी को भावी मुख्यमंत्री के रूप में पेश करके कांग्रेस यूपी का अगला विधानसभा चुनाव लड़े तो वहां कांग्रेस सत्ता में आ सकती है. पर यही स्थिति बिहार में नहीं है. यहां सवर्ण मतों में, जो पहले कभी कांग्रेस के पास थे, अब अधिक असर राजग का है. नीतीश कुमार के सुशासन व विकास ने इन मतों को और मज़बूती से एनडीए से जोड़ दिया है. जब सवर्ण मत बिहार में कांग्रेस को कम मिलेंगे तो मुस्लिम मत भी कम ही मिलेंगे. अधिकतर मुस्लिम मतों का लक्ष्य तो भाजपा को हराना होता है. वह ताक़त तो लालू प्रसाद-रामविलास पासवान में थी और कभी भविष्य में बन सकती है.

उत्तर प्रदेश में कांग्रेस को गत लोक सभा चुनाव में 21 सीटें भी मिलीं, जबकि बिहार में सिर्फ दो. वे दो सीटें भी कांग्रेस को अपने जनाधार के कारण नहीं, बल्कि इन उम्मीदवारों के व्यक्तिगत असर के कारण मिलीं. बिहार में कांग्रेस सिर्फ़ दो सीटों पर दूसरे स्थान पर रही. 30 सीटों पर तो उसके उम्मीदवारों की ज़मानतें तक ज़ब्त हो गईं. सासाराम से विजयी मीरा कुमार को 2004 के लोकसभा चुनाव में क़रीब चार लाख मत मिले थे. इस बार मात्र एक लाख 92 हज़ार. इस बार भाजपा उम्मीदवार मुनीलाल से मीरा कुमार के मतों का अंतर 43 हज़ार रहा, जबकि 2004 में यह अंतर दो लाख 58 हज़ार का था. तब राजद का कांग्रेस से चुनावी तालमेल था. यानी, लालू प्रसाद के प्रभाव वाले मतों के इस बार कांग्रेस से अलग हो जाने के बावजूद मीरा कुमार अपने निजी प्रभाव वाले मतों के बल पर जीत गईं. याद रहे कि उनके पिता जगजीवन राम यहीं से कांग्रेस से सांसद हुआ करते थे. उनका असर अब भी बाक़ी है. वह इस सीट से कभी नहीं हारे. 1984 में वह कांग्रेस में नहीं थे, तब भी वह किसी तरह हारते-हारते जीत गए थे. तब कांग्रेस की लहर थी.

इधर मुस्लिम बहुल क्षेत्र किशनगंज में कांगेस की जीत पूरी तरह उम्मीदवार असरारूल हक़ की व्यक्तिगत जीत है. इस बार कांग्रेस के उम्मीदवार असरारूल हक़ को किशनगंज में दो लाख 39 हज़ार वोट मिले, पर जब वह 1998 में वहां से समाजवादी पार्टी के उम्मीदवार थे, तब भी उन्हें दो लाख 30 हज़ार मत मिले थे. एनसीपी उम्मीदवार के रूप में 1999 में असरारूल हक़ को एक लाख 97 हज़ार मत मिले थे. याद रहे कि सपा और एनसीपी का किशनगंज में अपना कोई ख़ास जनाधार नहीं है. यानी कुल मिलाकर कांग्रेस में बिहार में अपने बलबूते पुनर्जीवित हो जाने की कोई ता क त फ़िलहाल दिखाई नहीं पड़ती. उत्तर प्रदेश में मुलायम सरकार के नेतृत्व वाली यादव-ठाकुर अतिवादिता के कारण मायावती ने दलित-ब्राह्मण समीकरण बनाया. वहां ब्राह्मणों और ठाकुरों के बीच वर्चस्व को लेकर पुरानी प्रतिद्वंद्विता रही है. इसी कारण वह 2007 के विधानसभा चुनाव में मायावती विजयी रहीं. पर अब उत्तर प्रदेश में मायावती के कुशासन के कारण उपजे असंतोष से कांग्रेस को लोक सभा चुनाव में इस बार बढ़त मिली. वैसे भी राहुल गांधी के रूप में ब्राह्मणों को नेहरू परिवार से एक नेता मिल गया है. आम ब्राह्मणों में जो भावना राहुल गांधी के प्रति देखी जा रही है, वह सोनिया गांधी के प्रति नहीं देखी गई. पर यूपी से अलग बिहार में नीतीश सरकार के ख़िलाफ़ अभी कोई जन असंतोष नज़र नहीं आ रहा है. ऐसा सुशासन, बेहतर क़ानून-व्यवस्था व विकास के कारण हो रहा है. हां, शिक्षकों की बहाली में गड़बड़ी हो रही है. कदाचार के आधार पर प्राप्त अंक पत्रों को शिक्षक की नौकरी का आधार बना दिया गया है. इसलिए बहाल हो रहे अधिकतर शिक्षक अयोग्य हैं. राजस्व बढ़ाने के लिए राजग के सत्ता में आने के बाद बिहार में जगह-जगह शराब की दुकानें खोलने की अनुमति राज्य सरकार ने दे दी है. इससे समाज की सेहत बिगड़ रही है, तो उद्दंडता बढ़ रही है. हालांकि हाल में नीतीश सरकार ने यह फ़ैसला किया है कि अब शराब की नई दुकान खोलने की अनुमति नहीं मिलेगी. पर पहले ही इतनी अधिक दुकानें खुलवा दी गई हैं कि इनमें से अनेक दुकानों को बंद कराने के लिए भी जन आंदोलन की ज़रूरत है.

सरकारी दफ्तरों में बढ़ रही घूसखोरी के ख़िलाफ़ बिहार में जनांदोलन किया जा सकता है, पर कोई भी कारगर जनांदोलन लालू-पासवान की मदद के बिना कांग्रेस नहीं चला सकती. अब भी लड़ाकू राजनीतिक जमात लालू के पास ही है, जिसका लाभ कांग्रेस उठा कर नीतीश सरकार को परेशानी में डाल सकती है. उसके साथ राजग के विरोध में ख़ुद को एक शालीन व अनुशासित विकल्प के रूप में पेश कर सकती है. याद रहे कि राजनीति से अपराधियों के धीरे-धीरे सफाए के बाद अब कांग्रेस की तरह अपेक्षाकृत शालीन राजनीति को बिहार की जनता देर-सवेर पसंद करेगी. लालू की राजनीति शालीन नहीं रही है. ख़ुद को सुधारने की क्षमता उनमें काफी कम है. हालांकि राज्य में कोई आंदोलन हो, तो राजद, लोजपा और कांग्रेस के वैसे कार्यकर्ता और नेता छंट जाएंगे जो सिर्फ़ सत्ता की मलाई खाने के लिए ही किसी दल में रहा करते हैं. इनमें से कई लोग सत्ताधारी राजग की ओर रुख़ भी कर रहे हैं. किसी बड़े जन असंतोष की अनुपस्थिति में किसी जातीय समूह को नीतीश कुमार के प्रभाव से खींच कर अपनी राजनीतिक ताक़त बढ़ा ले, यह कांग्रेस के लिए फ़िलहाल संभव नहीं दिख रहा है. इसलिए कि नीतीश कुमार जैसा दिन रात काम करके रिजल्ट देने वाले मुख्यमंत्री विरले होते हैं.

वैसे भी अपनी भारी हार के बाद लालू प्रसाद इन दिनों कुम्हला गए हैं. हर छोटी-बड़ी हार के बाद वह थोड़े ठंडे पड़ ही जाते हैं. केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल नहीं करके कांग्रेस ने लालू को उनकी औकात बता दी है. तब से वह और भी विनम्र व दबे-दबे नज़र आ रहे हैं. ऐसे भी चारा घोटाले से संबंधित जारी मुकदमों के कारण लालू प्रसाद फ़िलहाल कांग्रेस से झगड़ा नहीं कर सकते. हां, राजनीतिक प्रेक्षक बताते हैं कि मुकदमों से निपट लेने के बाद उन्हें भाजपा से भी मिल कर राजनीति कर लेने में कोई परहेज नहीं होगा, यदि कांग्रेस के छुटभैया नेतागण लालू प्रसाद का मज़ाक उड़ाना जारी रखेंगे और कांग्रेस उनसे तालेमल नहीं करेगी तो.

लालू प्रसाद को नज़दीक से और अधिक दिनों से जानने वाले लोग जानते हैं कि लालू प्रसाद को अपनी राजनीतिक सुविधा के लिए लचीलापन अपनाने में कभी कोई झिझक नहीं हुई. भागलपुर का दंगा 1989 में हुआ था. उस साल के लोकसभा चुनाव में लालू प्रसाद लोकसभा के लिए चुन लिए गए थे. तब भाजपा और कम्युनिस्टों के समर्थन से केंद्र में वीपी सिंह की सरकार चल रही थी. बिहार में भी विधानसभा का चुनाव होने को था और लालू प्रसाद मुख्यमंत्री बनना चाहते थे. उन्हें लगा कि बिहार में भी भाजपा की मदद लेनी पड़ेगी. इस पृष्ठभूमि में लालू प्रसाद ने लोकसभा में तब अपने भाषण में कहा था कि भागलपुर दंगे में भाजपा या आरएसएस का कोई हाथ नहीं है. उनके इस भाषण के टैक्स्ट को बाद में बिहार विधानसभा में प्रतिपक्ष के नेता यशवंत सिन्हा ने सदन में सुनाया था. याद रहे कि यशवंत सिन्हा तब इस बात पर नाराज़ थे कि दंगा जांच रपट में यह आरोप लगाया गया कि भागलपुर दंगे के लिए आडवाणी ज़िम्मेदार थे. लालू शासनकाल में जब भागलपुर दंगे की जांच रपट प्रकाशित हुई, तब तक लालू प्रसाद को अपनी सरकार चलाने के लिए भाजपा की मदद की ज़रूरत नहीं रह गई थी. उन दिनों पटना के राजनीतिक हलकों में यह अफवाह भी गर्म था कि यदि लालू प्रसाद को कांग्रेस ने अधिक परेशान किया, तो वह कोई चौंकाने वाला राजनीतिक क़दम भी उठा सकते हैं. इसलिए कांग्रेस को लालू प्रसाद की इस टिप्पणी से संतुष्ट हो जाना चाहिए था कि कांग्रेस से चुनावी तालमेल नहीं करना हमारी भूल थी.

बिहार में कांग्रेस की ढलान
लोकसभा चुनाव में प्राप्त मत

चुनाव वर्ष	कुल प्राप्त मतों का प्रतिशत
1984	51.84
1989	28.01
1991	24.16
1996	11.26
1998	7.27
1999	8.88
2004	4.5
2009	10.26

राजनीतिक प्रेक्षकों के अनुसार कांग्रेस ने लालू प्रसाद का गर्म दिमाग़ ठंडा करने के लिए और उन्हें सबक़ सिखाने के लिए यह अच्छा किया कि उन्हें केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल नहीं किया. इससे बिहार कांग्रेस के कई नेता व कार्यकर्ता खुश हैं. वे लालू प्रसाद से दुखी चल रहे हैं, क्योंकि गत लोक सभा चुनाव के समय लालू प्रसाद ने कांग्रेस से नाता तोड़ लिया था. पर वह तो बीती बात हो गई. अब यदि कांग्रेस लालू के साथ मिल कर नीतीश सरकार के ख़िलाफ़ बिहार में अभियान नहीं चलाएगी, तो कांग्रेस को बाद में लालू प्रसाद की तर्ज पर ही यह अफसोस ज़ाहिर करना पड़ेगा कि लालू प्रसाद को दुत्कार कर हमने भूल की. वैसे कांग्रेस यदि यह काम अभी नहीं करना चाहती है तो वह बिहार विधान सभा के 17 उपचुनावों में भी अकेले अपना भाग्य अजमा कर देख ले. हाल में लोक सभा चुनाव के बाद हुए फतुहा विधानसभा उप चुनाव में भी कांग्रेस उम्मीदवार की ज़मानत ज़ब्त हुई. वहां भी जद-यू की जीत हुई. वहां लालू-पासवान की मिलीजुली ताक़त की भी हार हुई है. अब बिहार की राजनीति के महाबली लालू नहीं, बल्कि नीतीश हैं. कांग्रेस को तो अब बिहार में अपनी उपस्थिति जताने के लिए वर्तमान महाबली के ख़िलाफ़ पूर्व महाबली को साथ लेकर ही राजनीति करनी पड़ेगी. यदि कांग्रेस समझती है कि लालू प्रसाद को साथ लेने के कारण उसकी छवि ख़राब होगी तो यह तर्क भी अनेक लोगों को सही नहीं लगता है. इसलिए कि कांग्रेस ने द्रमुक का साथ लेने के लिए तो करुणानिधि परिवार के सदस्यों की छवि का कोई ध्यान नहीं रखा. हाल में भी कांग्रेस ने बिहार में लोकसभा चुनाव में कुछ विवादास्पद लोगों को टिकट देने के मामले में भी अपनी छवि का कोई ध्यान नहीं रखा.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

अगले कुछ महीनों में राज्य में 17 विधानसभा सीटों पर उपचुनाव होने वाले हैं. इसमें कांग्रेस ज़रा अपने बल पर लड़ कर देख ले! उसको एक बार फिर अपनी वास्तविक ताक़त का अनुमान लग जाएगा. कांग्रेस कौन कहे, अभी तो राजद-लोजपा-कांग्रेस मिलकर भी बिहार में कोई चुनावी करिश्मा करने की स्थिति में नहीं हैं.

बिहार विधान सभा के अगले चुनाव में ब्राह्मणों के और अधिक वोट राजग को मिलेंगे. दूसरी ओर उत्तर प्रदेश में ब्राह्मणों के 32 प्रतिशत वोट इस बार कांग्रेस को मिले हैं. उत्तर प्रदेश में मायावती के कुशासन से लोगबाग उब रहे हैं. ब्राह्मण मतों के एक बार फिर नेहरू परिवार की ओर मुखातिब होने के कारण मुस्लिम मतों में कांग्रेस की ओर झुकाव देखा जा रहा है. यदि सचमुच राहुल

फोटो- प्रभात पाण्डेय

दुनिया

सिख विरोधी दंगों के घाव अब भी हरे हैं

सभी फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

अर्जुन भगत

आज से पच्चीस साल पहले यानी 1984 में हुए सिख–विरोधी दंगे भारतीय इतिहास के सबसे काले अध्यायों में से एक हैं. वह नरसंहार 31 अक्टूबर 1984 को सिख अंगरक्षक द्वारा इंदिरा गांधी की हत्या की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ था, जो एक और तीन नवंबर 1984 के बीच देश भर में अनगिनत बेगुनाह लोगों की मौत और विध्वंस का सबब बन गया. उस सांप्रदायिक हिंसा में हज़ारों सिखों को मौत के घाट उतार दिया गया. एक अनुमान के मुताबिक उस दंगे में दस हज़ार से भी अधिक लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा.

आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक भी केवल दिल्ली में ही 2733 लोगों को मार डाला गया था. इनमें पुरुष, औरत और बच्चे सभी शामिल थे. वैसे सच कहा जाए तो मृतकों की वास्तविक संख्या इससे भी अधिक थी. इस नरसंहार की सबसे चौंकाने वाली बात यह थी कि तीन दिनों तक यह ख़ूनी खेल देश के किसी सुदूर कोने में नहीं बल्कि राजधानी दिल्ली में चलता रहा. कांग्रेस के शासन में जब सिखों को मौत के घाट उतारा जा रहा था, उनकी दुकानों को आग के हवाले किया जा रहा था, उनके घर लूटे जा रहे थे और उनकी पत्नियों के साथ बलात्कार किया जा रहा था, तब पुलिस और प्रशासन ने कोई ठोस कार्रवाई नहीं की. इसे हर लिहाज़ से घृणित और जघन्य अपराध कहा जाएगा.

1947– जब भारत आज़ाद हुआ– से लेकर आज तक इतनी बड़ी और भयानक घटना कभी नहीं हुई है. यहां तक कि मुंबई और गुजरात के दंगे भी सिख विरोधी दंगों की तुलना में कमतर ही ठहरते हैं. इस वर्ष नवंबर में इस नरसंहार के 25 वर्ष पूरे हो जाएंगे. लेकिन कितनी अजीब बात है कि अभी तक बहुत कम लोगों को ही सज़ा मिल पाई है. यह कटु सत्य है कि इस घटना को अंजाम देने वाले और उनके राजनीतिक संरक्षकों में से 99.9 प्रतिशत सज़ा से साफ बच गए हैं और उन्हें उनके कृत्यों के लिए कभी कठघरे में खड़ा नहीं किया जा सकेगा. तो क्या हमें दिल्ली और देश के दूसरे हिस्से में घटे उस सिख विरोधी दंगे को एक बुरा सपना मानते हुए भूल जाना चाहिए ? आख़िरकार, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, जो ख़ुद एक सिख हैं, ने भी तो इस बात को कोई बहुत छिपे लहजे में नहीं कहा–दंगों को कई वर्ष बीत चुके हैं और अब लोग केवल वोट बैंक के लिए इन दंगों का इस्तेमाल करते हैं–हां, ऐसा हो सकता है. लेकिन एक राष्ट्र के नाते यह तो मानना ही पड़ेगा कि नरसंहार हुआ था. और, वह भी उस पार्टी के शासनकाल में जो धर्मनिरपेक्षता की मशाल लेकर चल रही है. जब सिख विरोधी दंगे हुए थे तब कांग्रेस की सरकार थी. हमारे संविधान और राष्ट्र का प्रारूप धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत और क़ानून के राज पर आधारित है. जो हमें पाकिस्तान, ईरान और बांग्लादेश जैसे मज़हबी देशों से अलग करता है.

ऐसे में इस तरह के नरसंहार की उपेक्षा क्यों की जाए? वर्षों पुराने पड़ जाने के तर्क के आधार क्यों मीडिया द्वारा इसकी ग़लत व्याख्या की जाए और क्यों राजनीति, नौकरशाही और न्यायिक अक्खड़पन के तले इसे भुला दिया जाए? क्यों अपने देश में धर्मनिरपेक्षता के हिमायती इस तरह के काले अध्याय पर पहले से विश्लेषण या शोध नहीं करते, जबकि वे गुजरात नरसंहार और कंधमाल की घटना को याद कराने में कभी असफल नहीं होते. क्यों इतने बड़े और भयानक नरसंहार को भारत में भुला दिया जाता है? क्या इसलिए कि एक अल्पसंख्यक दूसरे अल्पसंख्यक की तुलना में कम महत्वपूर्ण है या फिर इस दुखद सत्य के लिए कि कांग्रेस पार्टी के कई मुख्य नेता और उनके अधीनस्थ दंगे के अभियुक्त हैं?

आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक भी केवल दिल्ली में ही 2733 लोगों को मार डाला गया था. इनमें पुरुष, औरत और बच्चे सभी शामिल थे. वैसे सच कहा जाए तो मृतकों की वास्तविक संख्या इससे भी अधिक थी. इस नरसंहार की सबसे चौंकाने वाली बात यह थी कि तीन दिनों तक यह ख़ूनी खेल देश के किसी सुदूर कोने में नहीं बल्कि राजधानी दिल्ली में चलता रहा. कांग्रेस के शासन में जब सिखों को मौत के घाट उतारा जा रहा था, उनकी दुकानों को आग के हवाले किया जा रहा था, उनके घर लूटे जा रहे थे और उनकी पत्नियों के साथ बलात्कार किया जा रहा था, तब पुलिस और प्रशासन ने कोई ठोस कार्रवाई नहीं की. इसे हर लिहाज़ से घृणित और जघन्य अपराध कहा जाएगा.

शायद यह भी स्पष्ट है कि कैसे 1984 और 1989 में कांग्रेसी सरकार सही मायने में इस नरसंहार, जिसमें हज़ारों सिखों की जानें गईं, की तहक़ीक़ात नहीं करा पाई, कैसे न्यायपालिका ने काम किया और कैसे सरकार ने विभिन्न आयोगों का गठन किया. इसमें सिवाय करोड़ों रुपये बर्बाद करने के कुछ नहीं हुआ. इंदिरा गांधी के उन हत्यारों के बारे में बात की जाए, जो उनके अंगरक्षक थे तो बेअंत सिंह, सतवंत सिंह और एक तीसरे को दोषी पाते हुए महज़ कुछ ही वर्षों में फांसी पर लटका दिया गया. लेकिन उनका क्या हुआ, जिन्होंने हज़ारों लोगों को बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में (पूरे देश में क़रीबन 10,000 सिख मारे गए थे) मौत के घाट उतार दिया था? 25 साल बाद भी इस घटना के ऐसे कितने ज़िम्मेदार व्यक्तियों को दोषी ठहराया गया और उन्हें फांसी की सज़ा दी गई है? अनुमान लगाने की कोशिश करें, शायद 1000 या 500 या 300, जी नहीं, सिर्फ़ 17 लोगों को इस मामले में दोषी पाया गया और उन्हें उम्र कैद की सज़ा सुनाई गई. एक भी व्यक्ति को दिल्ली की अदालतों द्वारा फांसी की सज़ा नहीं सुनाई गई. ज़रा सोचिए उन क़ातिलों के बारे में जो अब भी हज़ारों लोगों को मौत की नींद सुलाकर दिल्ली की सड़कों पर घूम रहे हैं. इन सुस्पष्ट तथ्यों की एक के बाद एक सरकारों, न्यायपालिका, बुद्धिजीवियों यहां तक कि मीडिया ने भी जान बूझ कर उपेक्षा की. इन वर्षों में उस तथ्य के साथ छेड़छाड़ की गई, नई कहानी बनाई गई और नए सिद्धांतों को जोड़कर पेश किया गया. बड़ी चालाकी से दो या तीन बड़े मामलों को कांग्रेस के दिग्गज नेताओं जगदीश टाइटलर और सज्जन कुमार की ओर मोड़ दिया. उन्हें भीड़ को भड़काने का दोषी पाया गया. हां, इन्हीं दोनों को दोषी ठहराया गया, लेकिन इसके पीछे की तस्वीर क्या है. धर्मनिरपेक्षता की मशाल को लेकर चलने वाली कांग्रेस पार्टी की क्या भूमिका थी? क्या सही में उसके नेता भीड़ को उकसा रहे थे और उसका नेतृत्व कर रहे थे? उसके कितने नेताओं को दोषी पाया गया और उन्हें सलाखों के पीछे भेजा गया? राज्य प्रशासन के बारे में क्या कहा जाए? चलिए, इसकी शुरुआत दिल्ली पुलिस और उसके अधिकारियों से की जाए. कितने पुलिस अधिकारियों को ड्यूटी के दौरान लापरवाही बरतने के आरोप में दोषी पाया गया? क्या पुलिस कमिश्नर को सज़ा दी गई? उस समय दिल्ली के राज्यपाल क्या कर रहे थे? गृह मंत्रालय ने क्यों कुछ नहीं किया, जबकि पूरी दिल्ली पुलिस केंद्र सरकार के अधीन थी. तत्कालीन गृह मंत्री पीवी नरसिंह राव क्या कर रहे थे? इस ख़ूनी खेल को रोकने के लिए उन्होंने क्या किया? दिलचस्प संयोग यह कि वह बाद में प्रधानमंत्री भी बने.

बहुत से ऐसे असुविधाजनक सवाल हैं, जैसे क्यों सेना को दिल्ली की देख– रेख करने के लिए तुरंत आदेश नहीं दिए गए? दिल्ली में स्थिति को क़ाबू करने के लिए सेना मुश्किल से दो या तीन घंटे का समय लेती, क्योंकि सेना की छावनी शहर के बीचोंबीच है. हालांकि इंदिरा गांधी की हत्या के एक घंटे बाद राजीव गांधी को प्रधानमंत्री के रूप में चुन लिया गया. ऐसे में निस्संदेह इस घटना से राजीव गांधी चकित और शोकाकुल थे, लेकिन दूसरे लोग तो थे जो इस दंगे को रोकने के लिए कोई ठोस निर्णय ले सकते थे. फिर भी तुरंत कोई ठोस कार्रवाई नहीं हुई. ऐसा क्यों नहीं हुआ? वाकई हम नहीं जान पाएंगे. बहुत लोग तो सिख दंगे को भड़काने के लिए राजीव गांधी को भी दोषी मानते हैं, क्योंकि इस नरसंहार के कुछ महीने बाद उन्होंने इसकी निंदा करते हुए कहा कि जब एक विशाल पेड़ गिरता है तो पृथ्वी हिलती ही है. इस तरह से यह धूर्त संदेश प्रशासन तक पहुंच गया.

अगर हम यह विरोधी विचार मान भी लें कि प्रशासनिक अमला सदमे और सकते की हालत में होने की वजह से तुरंत कार्रवाई न कर सका, और इसी वजह से ख़ूनख़राबा हुआ, तब भी यह दलील घटना के वास्तविक रूप को सामने नहीं ला सकती है. इसलिए कि ख़ूनख़राबा इंदिरा गांधी की हत्या के घंटों बाद शुरू हुआ था. राजनीतिक व्यवस्था और सरकार के पास 24 घंटे का पूरा वक़्त यह सुनिश्चित करने के लिए था कि दिल्ली की सड़कों पर इस तरह की कोई घटना न घटे. पहले सिख की हत्या 31 अक्टूबर को नहीं हुई थी (जब इंदिरा गांधी की हत्या हुई थी), बल्कि उसके अगले दिन 10 बजे के आसपास हुई थी. उसके बाद तीन दिन तक दिल्ली की सड़कों पर मौत का नंगा नाच जारी रहा. अगर सरकार चाहती तो कार्रवाई कर सकती थी, लेकिन यह भी स्पष्ट है कि ऐसा करने के लिए कोई नहीं था. संदेश स्पष्ट था कि सिखों से प्रतिशोध लिया जा चुका था.

हम अगले कुछ हफ़्ते और महीने तक इस शर्मनाक और घृणित घटना के बारे में उठे सवालों की तह तक जाने की कोशिश करेंगे. असली पत्रकारिता के द्वारा ही सच्चाई से रहस्य का पर्दा उठना चाहिए. भले ही इसका निष्कर्ष कितना ही कटु क्यों न हो. सिख विरोधी दंगे के आरोपी सज़ा से बच गए, लेकिन सामाजिक रूप में यह स्वीकार करना ज़रूरी है कि हमारी सरकार, हमारी पुलिस, हमारे नेता और हम लोगों में कुछ कमी है. कभी कभी मैं सोचता हूं कि अगर राजीव गांधी इस घटना के दोषी को न्याय दिला देते तो शायद मुंबई और गुजरात जैसी घटनाएं ही नहीं घटतीं. सिख दंगे ने पूरे देश को संदेश दिया है. वह यह कि आप दूसरी क़ौम पर क्या अत्याचार करते हैं यह मायने नहीं रखता है, क्योंकि आपको इसके लिए सज़ा नहीं मिलेगी.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

दाऊद की आड़ में दहशत फैलाने का खेल

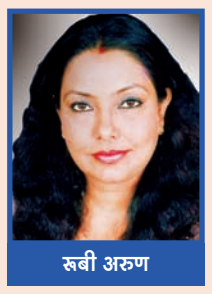

रूबी अरुण

छह जून का अलसाया–मुरझाया सा दिन. उमस और पसीने से तर–ब–तर. हर कोई अपने रोज़ाना के काम में मशगूल. पर ख़बरनवीसों के लिए करने को कुछ ख़ास नहीं. नई सरकार का गठन हो चुका था. मंत्रिमंडल का विस्तार भी. कोई ऐसा स्कूप भी नहीं, जिसके ज़रिए सनसनी फैलाई जा सके. न्यूज़ चैनलों को एक अदद ऐसी ख़बर की तलाश थी जिससे वे रायता फैला सकें. सुबह से बासी–उबाऊ ख़बरों को टेरते नंबर वन न्यूज चैनल *आज तक* की भाव–भंगिमा अचानक कुछ ज़्यादा ही तेज़ नज़र आने लगती है. ब्रेकिंग न्यूज़ आता है–अंडरवर्ल्ड डान दाऊद इब्राहीम के भाई अनीस इब्राहीम को कराची में अल हबीब बैंक के एटीएम के सामने गोली मार दी गई. ख़बर पर नज़र पड़ते ही तमाम न्यूज़ चैनलों में अफरा–तफरी मच गई. शोर मच गया. ब्रेकिंग न्यूज़ चलाने की होड़ लग गई. अंडरवर्ल्ड की ख़बरों के मुद्दे पर ख़ुद को शहंशाह समझने वाले स्टार न्यूज़ ने भी इस ख़बर पर खेलना चालू कर दिया. इन दोनों चैनलों की देखा–देखी दूसरे न्यूज़ चैनलों ने भी धड़ाधड़ ब्रेकिंग न्यूज़ चलाना शुरू कर दिया. कुछ ही पलों के अंतराल पर सभी चैनलों पर बस एक ही ख़बर. दाऊद इब्राहीम, अनीस इब्राहीम और उनकी मौत के कारोबार की ख़बरें. लगभग पांच घंटे तक इस ख़बर के ज़रिए न्यूज़ चैनलों ने डर, दहशत और रोमांच फैलाने की कोशिश की. भेड़चाल में शामिल सभी चैनल अपने–अपने सूत्रों के हवाले से ख़बर को और भी रोचक बनाने की जुगत में तमाम दावे करते नज़र आए. आम लोगों को तो इस ख़बर से ज़्यादा मतलब नहीं था, पर उनमें यह जिज्ञासा ज़रूर बनी रही कि अनीस मरा या बच गया. पर बड़े उद्योग–धंधों से जुड़े व्यवसायियों–कारोबारियों ख़ासकर मुंबई के उद्योगपतियों के लिए तो यह ख़बर ज़िंदगी से जुड़ी हुई थी. पर शाम होते–होते इस ख़बर की हवा निकल गई. पता चला कि पूरी ख़बर ही ग़लत निकली. अचानक सभी चैनलों को सांप सूंघ गया. सब ने यू–टर्न लिया और बग़ैर इस ख़बर की चर्चा किए दूसरी ख़बरों का रुख़ कर लिया. पर इन सबके बीच जो आम दर्शक है, उसने ख़ुद को बेहद छला हुआ महसूस किया. उसकी समझ में यह बात नहीं आई कि आख़िर न्यूज़ चैनलों ने एक झूठी और बकवास ख़बर के ज़रिए उनके बेशक़ीमती वक़्त को क्यों बर्बाद कर दिया? बग़ैर सच की छानबीन किए, तथ्यों की पड़ताल किए *आपको रखे आगे* और *सबसे तेज़* का मुगालता लिए चैनलों ने दर्शकों को क्यों गुमराह किया? क्या न्यूज़ चैनलों की नज़र में दर्शक इतने बेवकूफ हैं कि उन्हें किसी भी मनगढ़ंत ख़बर से भरमा देने की हिमाकत वे कर देते हैं? उनकी भावनाओं से खेलने का दुस्साहस कर बैठते हैं? आख़िर किसने दी उन्हें इस बात की इजाज़त? क्या माज़रा है इसके पीछे? मक़सद क्या है न्यूज़ चैनलों का? गाहे–बगाहे दाऊद और उसके आतंक की ख़बरें सनसनीखेज तरीक़े से दिखा कर न्यूज़ चैनलों को हासिल क्या होता है?

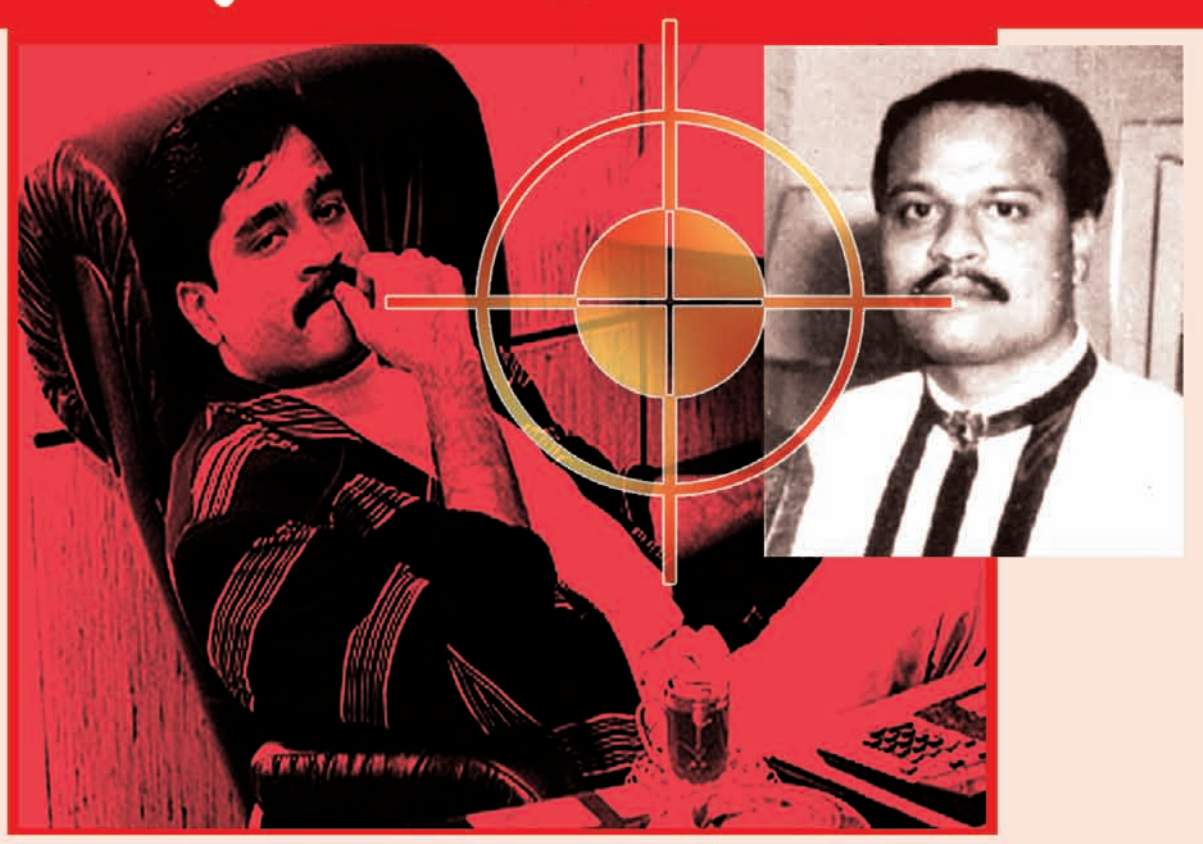

अंडरवर्ल्ड की ख़बरों के मुद्दे पर ख़ुद को शहंशाह समझने वाले स्टार न्यूज़ ने भी इस ख़बर पर खेलना चालू कर दिया. इन दोनों चैनलों की देखा–देखी दूसरे न्यूज़ चैनलों ने भी धड़ाधड़ ब्रेकिंग चलाना शुरू कर दिया. कुछ ही पलों के अंतराल पर सभी चैनलों पर बस एक ही ख़बर.

ऐसे कई सवाल दर्शकों के मन को उद्वेलित कर देते हैं. दरअसल लोगों की राय तो यह बन गई है कि यह कोशिश होती है आतंक को विज्ञापित करने की. दाऊद के दहशत के साम्राज्य को पुष्पित और पल्लवित करने की. वक़्त–वक़्त पर दाऊद के किस्से दिखा कर, सुना कर उसके ख़ौफ़ के राज को बरकरार रखने की. ताकि उसकी बर्बरता के निशान लोगों के जेहन से मिट न सकें और दाऊद का अवैध कारोबार मुसलसल चलता रहे. अंतरराष्ट्रीय अपराधी होने के कारण इनसे जुड़ी ख़बरों का खंडन या पुष्टि करने की जहमत ख़ुफ़िया या जांच एजेंसियां भी नहीं उठातीं. इनसे जुड़ी ज़्यादातर ख़बरें ऐसी होती हैं, जिनमें इनकी रज़ामंदी होती है. जो दाऊद या उस जैसे माफियाओं के फैलाए भय के बाज़ार को गर्म रखने का काम करती हैं. आरोप तो यहां तक है कि ख़बरों की प्रकृति या उसका स्वरूप क्या हो, यह भी अमूमन मुंबई में रहने वाले दाऊद के गुर्गे ही तय करते हैं. मिल बैठ कर इन ख़बरों की मार्केटिंग की नीतियां बनती हैं. जो इस मार्केटिंग का ज़रिया बनते हैं उनकी शर्तें पूरी की जाती हैं और फिर शानदार पैकेजिंग के साथ सनसनाती–गरजती ख़बर छा जाती है. चंद घंटों के लिए दहशतग़र्दी का एक नया बवंडर खड़ा हो जाता है. जब तक ख़बर उतरती है तब तक कितने ही व्यवसायी बलि का बकरा बन चुके होते हैं. वसूली के कारोबार में लगे लोग करोड़ों वसूल चुके होते हैं. ख़ौफ़ अपना निशान छोड़ चुका होता है. जो कुछ समय तक लोगों के दिलो–दिमाग़ पर हावी रहता है. जब इसका निशान कुछ धुंधलाने लगता है तो फिर एक नया शगूफ़ा रच दिया जाता है. यानी कि नाटक एक तय अंतराल पर चालू रहता है. यानी दाऊद से जुड़ी ख़बरें, ख़बर नहीं होतीं एक खेल होता है. दहशत का, वसूली का, ज़मीर के बिकने का, ख़बरों को तमाशा बनाने का, दर्शकों को मूर्ख बनाने का. मक़सद सिर्फ़–एक फ़ायदा. दर्शकों का नहीं. उन्हें तो मोहरा बनाया जाता है. फ़ायदा तो होता है दाऊद का और ख़बर की मार्केटिंग करने वालों का.

ruby.chauthiduniya@gmail.com

बांग्लादेश युद्ध में बाल-बाल बचे थे डॉ. धर्मवीर भारती

डॉ. धर्मवीर भारती बहुत ही निडर और निर्भिक व्यक्ति थे. उन्होंने साहित्य और कविता के क्षेत्र में तो बहुत ख्याति प्राप्त की, परंतु पत्रकारिता में भी उनका योगदान किसी सूरत में कम नहीं था. वह संपादक थे, फिर भी बांग्लादेश के स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े. वह पूर्वी क्षेत्र में 1971 में सितंबर माह से मुक्ति वाहिनी के संग्राम का विवरण देने के लिए ख़ुद पहुंचे थे. *धर्मयुग* में उन्होंने अपनी उस युद्ध यात्रा पर छह किस्तों में लेख लिखे थे, जो अद्वितीय हैं. शायद ही किसी संवाददाता ने किसी युद्ध को इतने क़रीब से देखते हुए विवरण दिए होंगे, जितने कि डॉ. भारती ने. उनके साथ *टाइम्स ऑफ इंडिया* समूह के छायाकार बालकृष्ण भी थे.

भारतीय सूचना सेवा में अफसर के नाते मुझे मंत्रालय ने इस युद्ध के लिए पी.आर.ओ. के तौर पर चुना. कैप्टन का ओहदा देकर उन्होंने मुझे वर्दी भी प्रदान की और यह आदेश दिया कि पूर्वी क्षेत्र में सेना के अफसरों के साथ तालमेल बिठाकर मैं भारतीय तथा विदेशी पत्रकारों को युद्ध क्षेत्र में ले जाऊं. तीन दिसंबर को जैसे ही भारत–पाक युद्ध प्रारंभ हुआ, शिलांग में मुझे डॉ. भारती, बालकृष्ण तथा दो अन्य विदेशी पत्रकारों (पीटर कार माइकल, जो इंग्लैंड के थे तथा फ्रांसीसी पत्रकार मार्क रिबु) को युद्ध क्षेत्र में ले जाने का आदेश मिला. चार दिसंबर को प्रातः हम लोग एक जीप में शिलांग से बांग्लादेश की तरफ़ रवाना हो गए. डॉ. भारती ने युद्ध यात्रा का वर्णन इस प्रकार लिखा था– मुक्ति वाहिनी की गनबोट में मुक्त क्षेत्रों का दौरा करने के बाद आया था. छह दिन की ठिठुरन और भटकन भरा सर्द अंतराल. फिर बख्शीगंज में ब्रिगेडियर क्लेर तथा भारतीय सेना के दूसरे अधिकारियों से भेंट और शेरपुर में स्वागत. वहां से ब्रह्मपुत्र के तट पर इस संग्राम की सब से महत्वपूर्ण मोर्चेबंदी का सर्वेक्षण. तभी जमालपुर से पाकिस्तानियों ने हम पर धड़ा–धड़ गोलाबारी शुरू की थी. तीन दिन की प्रतीक्षा के बाद हम हेलीकॉप्टर से वहां पहुंचे थे. ब्रह्मपुत्र के पार, जमालपुर के पीछे. यह तो हमें बाद में पता लगा कि हमारे जवान ब्रह्मपुत्र पार करके जमालपुर की पाकिस्तानी फौजों के पीछे जाकर बैठ गए और 11 दिसंबर को क़दम खींचने पर उन्हें मजबूर कर दिया. जमालपुर में पाकिस्तान की 31 बलूच रेजिमेंट द्वारा छोड़ी गई चीज़ों को देखकर पाकिस्तानी फौजियों की बर्बरता साफ दिख रही थी. ब्रह्मपुत्र के किनारे अचानक से हलचल शुरू हो गई है. यह ब्रह्मपुत्र पर सेतु बंध की तैयारी है. सेतु, जो बांग्लादेश की मुक्ति का विजय पथ प्रशस्त करने के साथ उपनिवेशवादी शोषण के विरुद्ध एशियाई क्रांति के कुछ नए पहलू उजागर कर रहा है. वह आठ दिसंबर की सुबह थी. शेरपुर में भारतीय सेना का भव्य स्वागत होने के बाद जनरल नागरा और अन्य सेना अधिकारी पत्रकारों के दल को लेकर सेना की अग्रिम पंक्ति पर जा पहुंचे. यहीं पर वह बड़ा हादसा हुआ जो डॉ. भारती ने स्वयं पैदा किया था. उन्होंने जनरल से कहा–यहां पर तो सब शांति है. हम पत्रकार तो गर्मी देखने के लिए यहां पर आए हैं. ब्रह्मपुत्र नदी के पार पाकिस्तानी सेना बैठी थी. डॉ. भारती के कहने के बाद जनरल नागरा पूरे दल को दो फर्लांग की दूरी पर ले गए और 15 मिनट तक दल के हर सदस्य को शत्रु सेना की गतिविधियों का विवरण दिया. हम सभी बारी–बारी से दूरबीन से जमालपुर में बने पाकिस्तान के बंकरों को देखकर लौट ही रहे थे कि शत्रु ने गोलीबारी शुरू कर दी. इसका विवरण डॉ. भारती ने इस प्रकार किया है, और हमारा मुड़ना था कि शू... शू... शू...शिक. कोई चीज़ हमारी बीच से गुज़रती और पास के रेत में धंस जाती और रेत का गुबार उठ जाता है. पलक मारते ब्रिगेडियर क्लेर लेट जाते हैं और अपने साथ जनरल को खींच लेते हैं–लाइ डाउन, दुश्मन फायर कर रहा है. और वाक्य पूरा नहीं होता, हम लेट भी नहीं पाते कि शू...शिक. और फिर तो बौछार. मेरी आंखों के आगे एक क्षण के लिए घुप अंधेरा–सा और फिर लाल–लाल उड़ते चकते–से, शायद भय, शायद... साथ के दो विदेशी फोटोग्राफर क्रांक्रीट स्लेब के नीचे हैं, उसके बाद बाहर जनरल नागरा और इधर खुले में मैं. क्लेर कुछ कहते हैं पर हमारे कान जैसे सिर्फ़ शू... शू...शिक... सुन रहे हैं और मुझे जरा–सी चेतना आती है. कहां हैं बालकृष्ण, ब्रिगेडियर बेरी, कैप्टन भटनागर? जैसे ही मैं गर्दन घुमाता, जनरल कड़कती आवाज़ में कहते कि हिलो मत, चिथड़े उड़ जाएंगे. वे रिकॉयललेस गन चला रहे हैं. *धर्मयुग* में ही पढ़ा था कि रिकॉयललेस गन टैंक उड़ाने का काम आती है. रिकॉयललेस गन सुन कर मैं हंसने की कोशिश करता हुआ कहता हूं–वे हमें टैंक समझ रहे हैं क्या? इधर हमारे तोपखाने ने फायर शुरू कर दिया. आधे मिनट के बाद शायद हमारे तोपखाने की वजह से उन्होंने अपने मोर्टार और रिकॉयललेस की पोज़ीशन बदली होगी, क्योंकि आधे मिनट के लिए फायरिंग बंद हुई. लौटिए और छितरा कर, फायरिंग हो तो लेटिए फिर बढ़िए. हम उठकर भागते हैं और फिर फायरिंग जारी. लेटना, फिर भागना, फिर लेटना, फिर भागना, भागते–भागते मैं देखता हूं कि बालकृष्ण आगे हैं, बाईं ओर पीछे मैं हूं और सबसे पीछे ब्रिगेडियर बेरी. बाद में मालूम हुआ कि गोले की चोट से उड़ा एक कांक्रीट का टुकड़ा उनके पैर में लग गया है. सांस चढ़ गई थी. मुंह पर ख़ून झलकने लगा था. आंखों में धुंधला दिख रहा था. कुछ तो ख़ून का दबाव तो कुछ पलकों में भरी रेत, थोड़ी देर में यह भी होश नहीं रहा कि फायरिंग कब आई, किस ओर से आई, बस अंधाधुंध गिरते–पड़ते, लेटते–उठते भागना और वह भी रेत में ऊंचे–नीचे खेतों में.

गांव पहुंचे तो सांस धौंकनी की तरह चल रही थी और लगता था कि अब गिरे, तब गिरे. उनकी गोलाबारी जारी थी. कहीं से वह हमारी एक–एक गतिविधि देख रहे थे, क्योंकि अब गोले गांव पर गिर रहे थे. लेकिन थोड़ी–सी आड़ चाहे वह केले के गाछों की हो या फूस के छप्पर की, कितनी मनोवैज्ञानिक सुरक्षा देती है. गांव का दृश्य विचित्र था. गोलाबारी के बावजूद गांव वाले वहीं हैं. दो आदमी जल्दी से बाल्टी में पानी भर कर ले आए और पांच–छह लोग तीन खाट लिए चादरें डालकर खड़े थे. मालूम हुआ कि औरतें और बूढ़े आसन बिछाकर अंजलि फैलाकर ख़ुदा से दुआ कर रहे थे कि हम बच जाएं और जवान खाट लेकर आए थे कि अगर हम घायल हो जाएं, तो शेरपुर पहुंचा दें. उन्होंने भी मोर्टार और रिकॉयललेस की जगह मीडियम मशीनगन चलाना शुरू कर दिया था, पर अब हम सावधानी से आगे बढ़ते जा रहे थे. जब हम अपनी जीपों के पास अपने तोपखाने की यूनिट के किनारे पहुंचे, तब पैर–मन भारी हो चुके थे और जांघें इस कदर भर गई थीं कि हर क़दम उठाने में कराहने की आवाज़ आती थी. ब्रिगेडियर बेरी और ब्रिगेडियर क्लेर जीवन में सिर्फ़ एक बार और ऐसी ही स्थिति में फंसे थे, हाजीपीर पर. उसी की स्मृति में वे पैराशूट के कपड़े का स्कार्फ आज तक बांधते हैं. आज दूसरी बार ऐसा हुआ है. सुझाव है कि हम जो लोग आज साथ थे, उनकी तस्वीर एक साथ ली जाए और उसे सब अपने पास रखे. कैमरा साफ कर बालकृष्ण किसी और को देते थे और ख़ुद भी ग्रुप में शामिल हो जाते थे.

डॉ. धर्मवीर भारती ने अपनी लेखनी द्वारा बांग्लादेश की आज़ादी की पूर्ण गाथा, मुक्तिवाहिनी के संग्राम से शुरू कर शेख मुज़ीब की रिहाई और सत्ता संभालने की कहानी *धर्मयुग* में प्रकाशित की. साथ ही उन्होंने भारतीय सेना और उसके जोख़िम भरे काम का लेखा–जोखा संसार के सामने पेश किया. बाद में इन लेखों के आधार पर एक पुस्तिका प्रकाशित की गई, जो विभिन्न प्रांतों के स्कूलों में पढ़ाई जाती है. तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी, जो बांग्लादेश की स्थापना की स्वयं सूत्रधार थीं, ने डॉ. भारती की सेवाओं का मूल्यांकन कर 1972 में उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया. राष्ट्रपति भवन की दृष्टांत–साईटेशन–में कहा गया कि डॉ. भारती ने सितंबर 1971 में बांग्लादेश की यात्रा और मुक्तिवाहिनी के साथ रहकर उसकी गतिविधियों का जो महत्वपूर्ण विवरण दिया, वह युद्ध के दौरान भारतीय सेना के साथ बांग्लादेश और पूर्वी क्षेत्र में हुए युद्ध का आंखों देखा विवरण प्रस्तुत किया. पाकिस्तान की सेना के आत्मसमर्पण के बाद इस लेखक को 18 सितंबर 1971 को ढाका जाने का अवसर मिला. बेगम मुज़ीब को उसी दिन मेजर तारा द्वारा रिहा कराया गया था और अपने साथियों के साथ मुझे उनसे मिलने का अवसर मिला. उसी दिन ढाका के गवर्नर हाउस से पाकिस्तान की बहुमूल्य पुस्तक–वॉर बुक ऑफ पाकिस्तान– लेकर भारत लौटा. यह पुस्तक लाकर मैंने भारत सरकार को सौंप दी थी.

रघुनाथ भटनागर

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

टीकाकरण नीति में हैं कई किंतु-परंतु

विश्व स्वास्थ्य संगठन की सलाह पर भारत और दुनिया के अन्य विकासशील देशों ने 1980 के दशक में यूनिवर्सल इम्यूनाइज़ेशन प्रोग्राम (यूआईपी) की शुरुआत की. इसके तहत पांच साल तक के बच्चों को छह जानलेवा बीमारियों से बचाने के लिए टीके लगाए जाने लगे. ये बीमारियां हैं- टी.वी., डिफ्थीरिया (गलघोंटू), काली खांसी, टिटनेस, पोलियो तथा खसरा या मीजिल्स. शिशु मृत्यु दर को कम करना किसी भी राष्ट्र के विकास का एक सबसे महत्वपूर्ण मानदंड माना जाता है. आज़ादी के बाद भारत भी इस दिशा में प्रयासरत रहा है. पिछले छह दशकों में भारत में शिशु मृत्यु दर में उल्लेखनीय कमी हुई है. आज़ादी के समय यह 200 प्रति हज़ार थी, जो घटकर अब लगभग 60 प्रति हज़ार रह गई है. जिन कारणों से शिशु और पांच वर्ष तक के बच्चे मरते हैं उनमें से प्रमुख हैं कुपोषण, दस्त तथा निमोनिया. इन बीमारियों से बचाव के लिए कुपोषण की रोकथाम एक प्रमुख कार्यक्रम हो सकता है. लेकिन कुपोषण की रोकथाम करने वाले कार्यक्रमों को भारत में सीमित सफलता मिली है. इस बीच, पिछले दशक में अनेक नए टीकों का विकास हुआ है, जिनमें रोटा वाइरस का टीका दस्त के लिए और न्यूमोकाकस का टीका निमोनिया के लिए प्रमुख हैं.

आदर्श स्थिति में राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम के अंतर्गत सभी टीकों को अमीर और ग़रीब के बच्चों को सरकारी स्वास्थ्य संस्थानों में समान रूप से मुफ़्त लगाया जाना चाहिए था. लेकिन वास्तविक स्थिति भिन्न है. अधिकांश मध्यमवर्गीय और उच्चवर्गीय टीकाकरण के लिए प्राइवेट केंद्रों में जाते हैं. इतना ही नहीं, लगभग सभी टीके अब प्राइवेट कंपनियां बनाती हैं और उसकी क़ीमत का एक हिस्सा डॉक्टर को कमीशन के रूप में जाता है. पांच सितारा होटलों में होने वाली डॉक्टरों की मीटिंग का ख़र्चा इन कंपनियों द्वारा वहन किया जाता है. इनके सिरमौर व्यक्तियों को विदेश यात्रा तक के लिए ले लाया जाता है. किसी भी मेडिकल जनरल विशेषकर पीडियाट्रिक जरनल के 70-80 प्रतिशत विज्ञापन वैक्सीन से संबंधित होते हैं. इस प्रकार डॉक्टर-कंपनी गठजोड़ इस क्षेत्र में इस प्रकार गुंथा हुआ है कि इसको अलग कर पाना संभव नहीं. सवाल उठता है कि क्या निष्पक्षता के किसी भी मानदंड से इस गठजोड़ के लाभार्थियों को वैक्सीन संबंधी कोई भी सिफ़ारिश करने का अधिकार होना चाहिए?

आज की राजनीति में सर्वोच्च सम्मानजनक शब्द है- गुड गवर्नेंस या सुशासन. स्वास्थ्य के क्षेत्र में सुशासन का प्रमुख मानदंड बनाया गया है टीकाकरण कार्यक्रम को जन-जन तक पहुंचना. इसलिए केंद्र तथा राज्य सरकारें अपने स्वास्थ्य कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सबसे ज़्यादा संवेदनशील टीकाकरण के कार्यक्रम के सफल क्रियान्वयन पर रहती हैं. इस बारे में आलोचना का भय उन्हें काफ़ी रहता है. इसके पीछे तर्क यह है कि टीकाकरण रोगों की रोकथाम का सबसे सस्ता, सबसे सरल और सबसे प्रभावी उपाय है. अगर कोई सरकार इस सस्ते, आसान और टिकाऊ तरीक़े को भी लागू नहीं कर पाती है तो बाक़ी स्वास्थ्य सेवाओं में वह कैसे सफल हो सकेगी? इसके साथ ही टीकाकरण कार्यक्रम की तकनीक में कोई भी नई खोज को सहर्ष उल्लास के साथ स्वीकार करके उसको लागू करने पर ज़ोर बना रहता है. इस प्रकार टीकाकरण कार्यक्रम के पक्ष में इस प्रकार की सर्वानुमति बनाई गई है कि कोई भी समझदार व्यक्ति या विशेषज्ञ या तो इसका विरोध करने के बारे में साहस नहीं कर पाता या उसकी आवाज़ नक्कारखाने में तूती की आवाज़ बन कर रह जाती है. सरकार की तरफ़ से इसमें नीति और कार्यक्रम सुधार संबंधी मुद्दे रहते हैं, जैसे-टीकाकरण की कवरेज को 50-60 प्रतिशत से बढ़ाकर 80-90 प्रतिशत तक पहुंचाना, टीकों के उत्पादन में राष्ट्रीय कंपनियों को बढ़ावा देना, प्रचार करना तथा नए-नए टीकों को राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम में शामिल करना. चेचक की बीमारी का उन्मूलन तथा पोलियो की बीमारी का लगभग उन्मूलन टीकाकरण कार्यक्रम की सफलता के पक्ष में अकाट्य प्रमाण माने जाते हैं. इसके अलावा यह भी दावा किया गया है कि राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम शुरू होने के बाद से नवजात शिशु की टिटनेस, गलघोंटू, काली खांसी और खसरा जैसी बीमारियों में भी बहुत कमी आई है, जिसका श्रेय स्वाभाविक ही टीकाकरण कार्यक्रम को दिया जाता है.

इस सबके बावजूद, टीकाकरण की तकनीक का बच्चे के स्वास्थ्य पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव, इसकी क़ीमत तथा नए टीकों को टीकाकरण कार्यक्रम में शामिल करने के बारे में कुछ-कुछ विरोधी स्वर मुखर होते रहते हैं. इन विरोधी स्वरों की उपेक्षा करने के स्थान पर इन पर सांगोपांग विचार करना विज्ञान और राजनीति दोनों के लिए आवश्यक है. यहां पर हम कुछ विरोधी पक्षों को सामने रख रहे हैं.

(1) 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में एडवर्ड जेनट के द्वारा इंग्लैंड में चेचक के टीके की खोज की शुरुआत के साथ ही यह टीका विवाद का केंद्र बना रहा. जहां पब्लिक हेल्थ एक्सपर्ट यह दावा करते रहे कि चेचक के फैलाव की रोकथाम के लिए हर व्यक्ति को यह टीका लगवाना आवश्यक है, वहीं एक-दूसरे पक्ष का यह दावा था कि चेचक का टीका अनेक बीमारियों को जन्म देता है, इसलिए इसको नहीं लगवाना चाहिए. जब विरोधी पक्ष की बात नहीं सुनी गई तो उसने यह आवाज़ उठाई कि राज्य को कोई अधिकार नहीं है कि वह किसी व्यक्ति की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ जबरन टीका लगाए. इंग्लैंड में इस आवाज़ को बड़ी सफलता मिली. वहां पर जबरन टीका लगाने के पक्ष में जो क़ानून बने थे, उनको समाप्त कर दिया गया और व्यक्ति को यह आज़ादी मिली कि टीका लगवाना या न लगवाना उसका निजी अधिकार है. यूरोप और अमेरिका में भी जबरन टीकाकरण के विरोध में आवाज़ें उठीं. अमेरिका में कई राज्यों ने इस क़ानून को समाप्त कर दिया और कई राज्यों में अब भी लागू है. आज के संदर्भ में यह मुद्दा बहुत गंभीर है, क्योंकि जबरन टीकाकरण के क़ानून का फ़ायदा उठाकर कोई भी दवा कंपनी अपने नए खोजे गए टीके को किसी भी देश के टीकाकरण कार्यक्रम में शामिल कराकर करोड़ों का मुनाफ़ा कमा सकती है. इस बार के अमेरिकी चुनाव में भी यह विवाद का मुद्दा रहा. जहां ओबामा ने जबरन टीकाकरण के प्रावधान का समर्थन किया, वहीं रिपब्लिकन उम्मीदवार मेक्केन ने इसका विरोध किया. ग्रेट ब्रिटेन में भी इस क़ानून के अभाव में सरकार को एम.एम.आर. वैक्सीन के उपयोग को बढ़ाने में बड़ी कठिनाइयां आती रहीं. इस वैक्सीन के विरोधियों ने यह दावा किया है कि इसके दुष्प्रभाव से बच्चों में आरिज्म (मूक-पंगुता) की बीमारी तेज़ी से फैल रही है. वहां पर वैक्सीन विरोधियों ने तत्कालीन प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर से 2001 में सवाल किया था कि वह घोषणा करें कि उन्होंने अपने बच्चे को एम.एम.आर. (मीजिल्स, रुबेजा) का टीका लगवाया कि नहीं. टोनी ब्लेयर ने इस प्रश्न का उत्तर देने से इंकार कर दिया. इसके विपरीत हिंदुस्तान में मानवाधिकार और बाल अधिकार से सरोकार रखने वाले यूनिसेफ तथा अनेक ए.जी.ओ. यह मांग करते रहे हैं कि टीकाकरण को अनिवार्य करने के अधिकार को प्राप्त करने के लिए राज्य क़ानून बनाए और जो माता-पिता अपने बच्चों को टीका न लगवाएं या टीका लगाने से इंकार करें, उनको दंड देने की व्यवस्था हो. इस प्रकार की मांग बाल अधिकार आयोग के मंच से भी की गई है. इस प्रकार राष्ट्रीय टीकाकरण नीति के लिए इस विषय में उपयुक्त नतीजे पर पहुंचना महत्वपूर्ण है.

(2) टीकाकरण कार्यक्रम के घोर समर्थक भी यह स्वीकार करते हैं कि टीका लगवाने के बाद कुछ प्रतिकूल प्रभाव हो सकते हैं. हालांकि उनका कहना है कि ये बहुत विरले ही होते हैं और बहुत मामूली भी होते हैं. अमेरिका जैसे देश में यह प्रावधान है कि जिस भी बच्चे को टीका लगने के बाद कोई भी प्रतिकूल लक्षण दिखाई दे, चाहे उनका टीका लगने से कोई सीधा संबंध हो या न हो. उस बच्चे के कार्ड में नोट करके राष्ट्रीय सर्वेक्षण कक्ष के रिपोर्ट किया जाए. किसी भी माता-पिता को अधिकार है कि अगर उसको ऐसा लगे कि बच्चे पर टीकाकरण के कारण कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है तो उसके लिए वह कोर्ट से मुआवजा मांग सकते हैं. पोलियो के टीके (ओरल पोलियो वैक्सीन या ओ.पी.वी.) से कुछ विरले मामलों में बच्चा लकवे का शिकार हो जाता है. इन मामलों में अमेरिकी अदालतों ने उन बच्चों को लाखों डॉलरों का मुआवज़ा दिलाया है. यह दवा कंपनियों के लिए इतना महंगा पड़ा कि मजबूरन अमेरिका में ओ.पी.वी. के उपयोग को त्याग कर एक अलग वैक्सीन आई.पी.वी. का प्रयोग शुरू किया गया. भारत जैसे देश में इस प्रकार के वैक्सीन इंजरी सर्वेलेंस या टीकाकरण से होने वाले संभावित दुष्परिणाम पर निगरानी रखने की कोई व्यवस्था नहीं है. इसको दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि कई संगठन टीकाकरण का प्रयोग बढ़ाने की मांग तो करते हैं पर इस प्रकार की निगरानी व्यवस्था की मांग की या तो उपेक्षा कर देते हैं या इसे ठुकरा देते हैं.

(3) टीकाकरण कार्यक्रम सबसे सस्ता और प्रभावी है, इस प्रस्तावना पर भी पुनर्विचार की आवश्यकता है. पश्चिमी देशों में टीके की क़ीमत कम और उसको लगाने की क़ीमत कई गुना आंकी जाती है. इसलिए वहां टीकाकरण कार्यक्रम बहुत महंगा बैठता है. भारत जैसे देश में टीका लगाने के ख़र्चे को लगभग नगण्य मान लिया जाता है. देश में जो हज़ारों-लाखों आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, ए.एन.एम. और आशा कार्यकर्ता हैं, उनके वेतन तथा अन्य खर्चों को टीकाकरण कार्यक्रम के ख़र्चे में शामिल नहीं किया जाता. सुदूर गांवों में फैली हुई बस्तियों में घर-घर, बस्ती-बस्ती जाकर प्रत्येक बच्चे का समय पर टीकाकरण करना अत्यंत श्रम का कार्य है. आमतौर पर होता यह है कि इन ज़मीनी स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं पर अनगिनत कार्यक्रमों की ज़िम्मेदारी डाल दी जाती है, जिन्हें सुचारू रूप से करना इनके लिए संभव नहीं होता. फिर असफलता का दोष भी इनकी अकर्मण्यता पर मढ़ दिया जाता है. एक अनुमान के अनुसार यदि ये स्वास्थ्य कार्यकर्ता केवल टीकाकरण कार्यक्रम को पूर्णता के साथ लागू करना चाहें तो इनका पूरा समय इसी काम में लग जाएगा और ये अन्य किसी काम को नहीं कर पाएंगे. इसलिए राष्ट्रीय टीकाकरण नीति को राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति की समग्रता में देखना ज़रूरी है. क्या यह बेहतर नहीं होगा कि ये स्वास्थ्य कार्यकर्ता अपना अधिक समय कुपोषण की रोकथाम की शिक्षा, स्वच्छता का प्रचार और छोटी-मोटी बीमारियों के इलाज में लगाएं? क्या ये एक साथ टीकाकरण भी प्रभावी तरीके से कर सकते हैं और अन्य काम भी, इन प्रश्नों पर विस्तृत विचार आवश्यक है.

(4) इंडियन एकेडमी ऑफ पीडियाट्रिक्स ने अभी पिछले वर्ष ही टीकाकरण नीति में एक नया आयाम जोड़ा है. उसके सुझावों के अनुसार कुछ टीके तो ऐसे हैं, जिनको सभी बच्चों को दिया जाना चाहिए. लेकिन अन्य टीके ऐसे हैं, जिनको केवल उन्हीं बच्चों को दिया जा सकता है जिनके माता-पिता उसकी क़ीमत दे सकते हैं. इस नवीन अवधारणा के अनुसार टीके से व्यक्तिगत सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है और सार्वजनिक सुरक्षा परम आवश्यक नहीं है. इस नए तर्क के अनुसार पढ़े-लिखे, साधन संपन्न परिवारों के बच्चों को नए नवीन टीके लगाए जा रहे हैं. इंडियन एकेडमी ऑफ पीडियाट्रिक्स ने नए टीकों के बारे में जो सुझाव दिए हैं उनको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है. 1) वे टीके जिनको आई.ए.पी. राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम में जोड़ने की सिफ़ारिश कर रही है तथा प्राइवेट प्रैक्टिस में इनका प्रयोग भी किया जा रहा है- ये हैं: एम.एम.आर. वैक्सीन-मीजिल्स, मम्प्स और रुबैला के लिए, हिपेटाइटिस बी वैक्सीन- जिगर के कैंसर की रोकथाम के लिए, टायफाइड वैक्सीन-मियादी बुख़ार के लिए, हिब वैक्सीन-निमोनिया तथा दिमाग़ी बुख़ार के लिए. 2) इस ग्रुप में वे टीके हैं जिनको राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम में शामिल करने की सिफ़ारिश नहीं की जा रही, लेकिन सीमित रूप से माता-पिता से राय करके मां-बाप बच्चों को दे सकते हैं. ये हैं- हिपेटाइटिस ए वैक्सीन-बच्चों में पीलिया से रोकथाम के लिए, बेलीसेला वैक्सीन-चिकन पॉक्स से बचाव के लिए व न्यूमोकॉक्स वैक्सीन-निमोनिया से बचाव के लिए. इन सबको मिलाकर 14 बीमारियों से बचाव के लिए पांच वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए अलग-अलग टीकों की सिफ़ारिश की जा रही है. इनमें से कुछ टीकों को एक बार और कुछ को एक से अधिक बार दिया जाता है. भविष्य में और भी कई नई वैक्सीन बाज़ार में आएंगी. इनमें से प्रमुख है रोटावाइरस वैक्सीन-दस्त के लिए. पांच वर्ष तक की उम्र के बच्चों को 13-14 टीके लगाए जाते हैं, जिसके लिए वे 20-25 बार डाक्टर के पास जाते हैं. औसतन एक बच्चे के टीकाकरण का ख़र्च 10,000 से 18,000 रुपये आता है. ऐसा पाया जाता है कि बच्चे के जन्म से शुरू से ही माता-पिता को पूरी जानकारी नहीं दी जाती कि बच्चे को कुल कितने टीके लगने हैं और इनमें कुल कितना ख़र्चा आएगा. इससे माता-पिता को पूरा विचार करने का मौका नहीं मिल पाता. बच्चे को डॉक्टर के पास लेकर पहुंचते हैं तो अचानक डॉक्टर बताते हैं कि इस बार बच्चे को यह टीका लगना है. अगर माता-पिता इसमें आना-कानी करते हैं तो डॉक्टर या तो उनको कहते हैं कि बच्चे के स्वास्थ्य में कोई भी ख़तरा मोल लेना ठीक नहीं और इसमें पैसा बचाने का लालच न करें. उस पर भी यदि मां-बाप का संकोच बना रहता है तो बच्चों के कार्ड पर लिख दिया जाता है कि मां-बाप ने टीकाकरण से इंकार कर दिया है.

फोटो- *प्रभात पाण्डेय*

इससे मां-बाप के ऊपर और अधिक दबाव पड़ता है. क्योंकि अधिसंख्य डॉक्टर इसी प्रकार का दबाव डाल रहे होते हैं.

(5) पिछले 10-12 वर्षों में पोलियो टीकाकरण के द्वारा पोलियो उन्मूलन का कार्यक्रम देश के क्षितिज पर छाया रहा. लगातार अभूतपूर्व प्रयासों के बावजूद पोलियो उन्मूलन कार्यक्रम में सफलता नहीं मिली है. अरबों रुपये इस कार्यक्रम में लगाए गए हैं, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था. कुछ पक्षों ने यह इंगित किया है कि अधिक संख्या में वे ही बच्चे पोलियोग्रस्त हो रहे हैं, जिनको बार-बार पोलियो की दवा पिलाई जा रही है. इसी प्रकार खसरा के टीकाकरण के बारे में भी समय-समय पर समाचार आते रहे कि कुछ बच्चों की टीकाकरण के बाद मृत्यु हो गई. आमतौर से इन सब पक्षों की उपेक्षा कर दी जाती है. जब मेडिकल के विद्यार्थी अपनी डिग्री प्राप्त करते हैं तो उनको ग्रीक दार्शनिक और चिकित्सक हिपोक्रेटिस की शपथ दिलाई जाती है, जिसका एक प्रमुख सूत्र है- कोई नुकसान मत करो. इसका अर्थ यह है कि डॉक्टर कोई ऐसी दवा या इलाज मरीज़ को न दे, जिससे उसे कोई नुकसान हो. आम तौर से चिकित्सक समुदाय इस सूत्र की पूर्ण उपेक्षा करता है. उसका छुपा सूत्र है कि अधिक लोगों को लाभ पहुंचाने के लिए कुछ लोगों को नुकसान पहुंचाना जायज है. इस सूत्र के माध्यम से वे टीकाकरण के विरोधियों को बड़ी आसानी से परास्त कर देते हैं. दुर्भाग्य से भारत सरकार ने कोई ऐसा तंत्र नहीं बनाया है जिससे लाभार्थियों और नुकसान पाने वाले दोनों पक्षों की गणना हो सके. इसलिए टीकाकरण के बारे में सही नीति बनाने के लिए आवश्यक है.

टीकाकरण की तकनीक की सफलता की मान्यता आधुनिकतावाद की प्रथम प्रमेयों के केंद्र में है. इसलिए आधुनिकतावादी चेतना के प्रभुत्व के समेत टीकाकरण के विरोध को न तो एक सकारात्मक व रचनात्मक हस्तक्षेप की मान्यता मिलेगी, न ही इसको अपने प्रयास में आधुनिकतावादी राज्य से कोई मान्यता. इसके बावजूद, जो लोग टीकाकरण की अंधी दौड़ और मेडिकल साइंस उद्योग के गठजोड़ के चलते इसके अर्धसत्यों और अंधकूपों को पहचान चुके हैं उनको अपना विरोध का धर्म विनम्रता और मज़बूती से निभाना चाहिए. उनको मांग करनी चाहिए कि एक देसी शोधतंत्र को खड़ा किया जाए जो विदेशी अध्ययनों के आधार पर नहीं बल्कि देसी अध्ययनों के आधार पर निर्णय लेने में सभी पक्षों को और सरकार को मदद दे सकें. साथ ही प्रत्येक माता-पिता को सभी टीकों के लाभ-हानि के बारे में पूरी जानकारी दी जाए, ताकि वे स्वविवेक से ये निर्णय ले सकें कि वे अपने बच्चे को टीका लगवाना चाहते हैं या नहीं. साथ ही बाल रोगों में कमी लाने और बाल मृत्यु दर को कम करने के लिए सरकार कुपोषण की रोकथाम और स्वच्छ पेयजल स्वच्छता इत्यादि कार्यक्रमों को प्रभावशाली तरीक़े से लागू करे.

(लेखक स्वास्थ्य नीति संवाद के संयोजक हैं)

डॉ. ओंकार मित्तल

feedback.chauthiduniya@gmail.com

जुलाई में होंगे कुछ ख़तरनाक जनसंपर्क

एम जे अकबर

वाशिंगटन में एक परेशान करनेवाली सरगोशी चल रही है. बराक ओबामा अपने पहले कार्यकाल के दौरान ही शांति की स्थापना चाहते हैं. उन्होंने वह जादुई और ताक़तवर नुस्खा खोज लिया है, जो दो विषैले पौधों–फिलिस्तीन और कश्मीर–की जड़ों को ख़त्म कर देगा. उन्होंने इज़राइल से कहा है कि वह जुलाई के अंत तक एक स्वतंत्र फिलीस्तीन की निश्चित कार्ययोजना चाहते हैं. जुलाई ही वह महीना है, जब हिलेरी क्लिंटन भारतीय उपमहाद्वीप के दौरे पर आने वाली हैं. ज़ाहिर तौर पर, उनके बस्ते में अफ–पाक के लिए युद्ध–संहिता और भारत–पाक के लिए शांति का नुस्खा होगा.

हिलेरी क्लिंटन के लिए यहीं कुछ अच्छी ख़बर है. कश्मीर समस्या पहले ही सुलझ चुकी है. दरअसल इसे एक जनवरी 1948 को ही सुलझा लिया गया था. उसी दिन जब भारत और पाकिस्तान ने अपनी फौजों को युद्धविराम रेखा के पास रोक दिया था, जिसे संयुक्त राष्ट्र ने मान्यता दी थी. 1972 में शिमला समझौते के तहत, उन्होंने इसे नया नाम नियंत्रण रेखा का दिया था. कुछ ही अंतरराष्ट्रीय समझौते ऐसे हैं जो इतनी उठापटक के बावजूद अपना अस्तित्व बचाए हुए हैं. इस समझौते को तो युद्ध के हरेक स्वरूप का ताप सहना पड़ा है–नियमित से लेकर अनियमित और परोक्ष तक. पाकिस्तान ने 1965 में कश्मीर का नक्शा बदलने की कोशिश की थी. जनवरी 1966 में इसने सहमते हुए ताशकंद में युद्धविराम–रेखा की प्रासंगिकता को क़ायम रखने की कोशिश की, जब भारत और पाकिस्तान ने एक–दूसरे की जीती हुई ज़मीन लौटा दी थी.

छह दशकों के संघर्ष के बाद भी एक ओर से दूसरी ओर छह इंच की घास का भी अतिक्रमण नहीं हुआ. अगले छह दशकों का संग्राम या नपुंसकता भी भूगोल को नहीं बदलनेवाली है. हिलेरी क्लिंटन इस समस्या को उतने ही मिनटों में सुलझा सकती हैं, जितने मिनटों में भारत और पाकिस्तान सहमत होकर नियंत्रण रेखा को अंतरराष्ट्रीय सीमा घोषित कर दें. पंजाब और बंगाल का विभाजन हो चुका है. कश्मीर तीसरा सबसे बड़ा राज्य होगा, जिसका औपचारिक तौर पर बंटवारा होगा. साथ ही, 1947 की राख को विभाजन की हड्डियों के साथ ही दफ़न किया जा सकता है.

> हिलेरी क्लिंटन के लिए यहीं कुछ अच्छी ख़बर है. कश्मीर समस्या पहले ही सुलझ चुकी है. दरअसल इसे एक जनवरी 1948 को ही सुलझा लिया गया था. उसी दिन जब भारत और पाकिस्तान ने अपनी फौजों को युद्धविराम रेखा के पास रोक दिया था, जिसे संयुक्त राष्ट्र ने मान्यता दी थी.

भारत इस सच्चाई को स्वीकार करने को तैयार है. पाकिस्तान को शायद मनाने की ज़रूरत पड़े. उसे कहना होगा कि बहस और विवाद की जटिलता से कुछ भी मिलने को नहीं और जो कुछ भी मिलेगा, वह साफगोई से ही मिलेगा.

फिर, स्वाधीनता की उन आकांक्षाओं का क्या, जो आम तौर पर कश्मीरियों की भावना से जोड़ दी जाती हैं. यह एक भ्रामक धारणा है. 1947 में ब्रिटिश सैनिकों की वापसी की शर्तें बिल्कुल साफ थीं. ब्रिटिश साम्राज्य के किसी भी हिस्से, अधीनस्थ राज्य या शाही रियासतों को स्वतंत्रता का विकल्प नहीं दिया गया था. स्वाधीनता की संभावना उछालने वाले राज्यों की सूची काफी लंबी है. जोधपुर–जूनागढ़, त्रावणकोर–कोचीन, हैदराबाद, बलूचिस्तान और स्वात तो इनमें से कुछ नाम मात्र हैं. हसन शहीद सुहरावर्दी और शरत चंद्र बोस की सोच से एकीकृत और स्वाधीन बंगाल का विचार शानदार था. पाकिस्तान ने 1947 में जनजातीय छापामारों को हथियार से लैस कर श्रीनगर की तरफ़ इसलिए नहीं भेजा था कि कश्मीर स्वतंत्र हो सके. कराची मुस्लिम–बहुल घाटी को पाकिस्तान में मिलाना चाहता था. इसने स्वाधीनता का राग अलापना तभी शुरू किया, जब भारतीय सेना की दखल की वजह से इसका कश्मीर पर अधिकार करने का सपना टूट गया. यह सभी तथ्य सत्य हैं, भले ही कड़वे हों. कश्मीरियों की छह दशक से जारी ठंडी सांसों से भी यह तथ्य बदलने वाले नहीं हैं.

पाकिस्तान 1947 और 48 में एक शांतिपूर्ण समझौते को अपना सकता था. जम्मू और कश्मीर के बारे में अंतिम फ़ैसले को थोड़े दिन तक टाला जा सकता था. नेहरू ने लॉर्ड माउंटबेटन को लिखी एक चिट्ठी में कहा भी था कि वार्ता 1947 के बसंत के बाद शुरू हो सकती है. यह भी संभव है कि पाकिस्तान शायद बातचीत के ज़रिए थोड़ी अधिक ज़मीन पा सकता था, बनिस्बत जितनी इसने हिंसा के ज़रिए पाई. इतिहास हालांकि मूर्खताओं के लिए पुरस्कार नहीं देता. फ़िलहाल तो एक तर्कसंगत बात यही होगी कि इस महंगे अध्याय को वहीं बंद कर दिया जाए, जहां इतिहास ने अपने पदचिह्न छोड़े हैं.

यह सामान्य ज्ञान की बात है कि वाशिंगटन बेसब्री से भारत–पाक वार्ता का अगला दौर चाहता है. वह भी दोनों देशों की सेनाओं के प्रमुखों के बीच, न कि दोनों सरकारों के प्रमुखों के बीच. काबुल और दिल्ली के बीच के इलाक़ों में शांति और स्थिरता के लिए तालिबान जैसे आतंकी और धार्मिक उन्मादियों की तरफ़ से ख़तरा बढ़ा हुआ है. यहां स्थिरता ज़ाहिर तौर पर भारत और पाकिस्तानी फौजों के बीच सहयोग से ही क़ायम की जा सकती है. यह तब तक संभव नहीं है, जब तक सैनिक बिना किसी लक्ष्य के किए जा रहे इस युद्ध से थक नहीं जाते. भारत पाक–अधिकृत कश्मीर के अंदर से ज़मीन नहीं चाहता. पाकिस्तान भारत के क़ब्ज़े से एक गज़ ज़मीन भी नहीं ले सकता. तो, फिर आख़िर एक स्वनाशी अहंकार के अलावा विवाद क्या है?

युद्ध की समाप्ति–अगर ऐसा हो भी जाए तो–निश्चित तौर पर सहयोग का पर्यायवाची नहीं है. भारत और पाकिस्तान को यह समझने में समय लगेगा कि दोनों ही एक–दूसरे के लिए कितने महत्वपूर्ण हैं. समृद्धि को सही मायनों में चमक व्यापार देता है, जो इस्लामिक पहचान से अधिक दूसरे कारकों पर निर्भर करता है. भारत की औद्योगिक ताक़त और पूंजी के भय को धीरे–धीरे ही कम करना होगा. आतंकी, जो भारत की हरेक चीज़ से नफरत करते हैं, शांतिपूर्वक ग़ायब नहीं हो जाएंगे. हालांकि इससे बुरा कुछ नहीं हो सकता कि दो परमाणु ताक़तें एक ओर तो आंतरिक आक्रामकता से लैस हों और दूसरी तरफ़ अपमानजनक बेरुखी अपनाएं.

स्पष्ट तथ्य हमारे सामने हो सकते हैं, लेकिन हमारे पास उसे देखने की दृष्टि होनी चाहिए. हिलेरी क्लिंटन बेहतर कर सकती हैं, अगर वह इस दृष्टि को विकसित कर आएं. साथ ही, विशेष ताक़त वाले चश्मे भी उनके हैंडबैग में हों तो और अच्छा. वह इस्लामाबाद में बैठे उनके मित्रों के लिए यक़ीनन बेहतर उपहार साबित होंगे.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

जब तोप मुक़ाबिल हो

पहले सौ दिनों पर ही टिकी है सरकार की साख

> प्रधानमंत्री ने अपने वित्त मंत्री को एक ख़त लिखा है जिसमें उनसे कहा गया है कि वह ऐसा बजट बनाएं, जो कांग्रेस नेतृत्व वाली सरकार के एजेंडे को पूरा करने में मदद करे. वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी हैं, जो राजनीति में मनमोहन सिंह से वरिष्ठ हैं, लेकिन पद में छोटे हैं. क्यों प्रधानमंत्री को ऐसा ख़त लिखना पड़ा और क्यों उसे प्रेस में देना पड़ा? क्या वित्त मंत्री कुछ ऐसा रुख़ अपना रहे थे जो एजेंडे को पूरा करने में रुकावट बन रहा था या फिर इसे प्रचार करने के लिए दिखाया गया था. ऐसी बातें मन में शंका पैदा करती हैं.

कांग्रेस को, विशेषकर सोनिया गांधी और मनमोहन सिंह को यह समझने की ज़रूरत है कि उनके एक–एक बयान पर, उनके एक–एक क़दम पर लोगों की निगाह है. लोगों को कोई आशा भाजपा से नहीं है, यह उन्होंने चुनावों में दिखा दिया है पर उनकी आशा कांग्रेस से है, इसका तो इशारा दे ही दिया है. इस इशारे को सोनिया गांधी और मनमोहन सिंह के लिए ज़रूरी है कि वे समझें. उनका समझना तो ज़रूरी है, लेकिन उससे भी ज़रूरी है कि वे लोगों को बताएं कि वे समझ रहे हैं.

सौ दिन का कार्यक्रम सरकार बना रही है और कह रही है कि सौ दिन के बाद वह समीक्षा करेगी कि कितना वह सफल रही, साथ ही इस समीक्षा को वह जनता के सामने प्रेस के द्वारा लाएगी. इसका स्वागत किया जाना चाहिए. सौ दिन के पहले एजेंडे को जनता के सामने बार–बार रखना चाहिए ताकि जनता उस एजेंडे को समझ सके और देख सके कि वह लागू हो रहा है या नहीं. यह इसलिए ज़रूरी है क्योंकि अब तक जनता के हित के कार्यक्रम काग़ज़ पर बनते थे, काग़ज़ पर ही पूरे हो जाते थे, काग़ज़ पर ही समीक्षा हो जाती थी और काग़ज़ पर ही शाबाशी ले ली जाती थी.

कांग्रेस एक नई शुरुआत कर सकती है. सौ दिन के एजेंडे पर अमल करने और निगरानी रखने में जनता को शामिल कर सकती है. इससे वह एक नया माहौल बना सकती है, ताकि जनता उसे अपना पूरा भरोसा देने के बारे में सोच सके.

प्रधानमंत्री ने अपने वित्त मंत्री को एक ख़त लिखा है जिसमें उनसे कहा गया है कि वह ऐसा बजट बनाएं, जो कांग्रेस नेतृत्व वाली सरकार के एजेंडे को पूरा करने में मदद करे. वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी हैं, जो राजनीति में मनमोहन सिंह से वरिष्ठ हैं, लेकिन पद में छोटे हैं. क्यों प्रधानमंत्री को ऐसा ख़त लिखना पड़ा और क्यों उसे प्रेस में देना पड़ा? क्या वित्त मंत्री कुछ ऐसा रुख़ अपना रहे थे जो एजेंडे को पूरा करने में रुकावट बन रहा था या फिर इसे प्रचार करने के लिए दिखाया गया था. ऐसी बातें मन में शंका पैदा करती हैं. तीन जुलाई को बजट पेश होने वाला है, और देखना दिलचस्प होगा कि प्रधानमंत्री के इस ख़त का वित्त मंत्री पर कितना असर हुआ और बजट का कितना हिस्सा कमज़ोर वर्गों के लिए आरक्षित किया गया है. बजट कई बातें और साबित करेगा.

राष्ट्रपति ने अपने अभिभाषण में सच्चर कमिटी की रिपोर्ट का जिक्र किया है. देखना होगा कि यह बजट इस घोषणा को पूरा करने के लिए पैसा भी देता है या नहीं. इतना ही नहीं, प्रधानमंत्री ने दो हज़ार छह में एक मशहूर बयान दिया था जिसका देश के लोगों ने खुले दिल से स्वागत किया था. यह बयान था कि देश के संसाधनों पर पहला हक़ ग़रीब, कमज़ोर और अल्पसंख्यक वर्ग का है. अब सरकार पूरी तरह मनमोहन सिंह के नियंत्रण की सरकार है, इसलिए आशा करनी चाहिए कि इस घोषणा को पूरा करने वाला यह बजट होगा.

जब आशाएं जगती हैं तो वे एक ख़तरा भी पैदा करती हैं.

> राष्ट्रपति ने अपने अभिभाषण में सच्चर कमिटी की रिपोर्ट का जिक्र किया है. देखना होगा कि यह बजट इस घोषणा को पूरा करने के लिए पैसा भी देता है या नहीं. इतना ही नहीं, प्रधानमंत्री ने दो हज़ार छह में एक मशहूर बयान दिया था जिसका देश के लोगों ने खुले दिल से स्वागत किया था.

ख़तरा होता है कि वे लोग जो आशान्वित होते हैं वे क़दमों को कसौटी पर जल्दी–जल्दी कसने लगते हैं. फ़ैसले भी जल्दी–जल्दी लेने लगते हैं. कांग्रेस के लिए यह स्थिति ज़्यादा ख़तरनाक है, क्योंकि उसे आने वाले कई सालों तक विधानसभा चुनावों का सामना करना है. इसी साल महाराष्ट्र और अगले साल बिहार, झारखंड और हरियाणा, फिर साल बाद उत्तर प्रदेश. बीच में बंगाल का चुनाव. इस सारे चुनावों में कांग्रेस को कितना समर्थन मिलेगा, यह इस पर निर्भर करता है कि वह केंद्र की सरकार कैसे चलाती है और उसका फ़ायदा कितना जनता को मिलता है. कांग्रेस के लिए सब कुछ आसान नहीं है. राष्ट्रपति ने सौ दिन के भीतर महिला आरक्षण विधेयक लाने की घोषणा की है. इसका मतलब बजट सेशन में यह बिल आएगा. बिल पास भी हो जाएगा. लेकिन शरद यादव व मुलायम सिंह यादव ने उसका विरोध सदन और बाहर करने की घोषणा कर दी है. इस घोषणा के साथ उन्होंने एक सवाल खड़ा किया है कि वे महिलाएं कभी चुन कर नहीं आ पाएंगी जो पिछड़े और कमज़ोर वर्गों की हैं. वे चाहते हैं कि महिला आरक्षण में पिछड़े वर्ग की महिलाओं को अलग से आरक्षण मिले.

क्या यह मांग संपूर्ण रिज़र्वेशन नीति पर लागू करने का सिद्धांत बन सकती है? जैसे सत्ताईस प्रतिशत सरकारी नौकरियां पिछड़ों के लिए आरक्षित हैं, उसे भी और कारगर बनाने के लिए पिछड़ों की कमज़ोर जातियों को उप आरक्षण का प्रावधान कर दिया जाए. फिर मुस्लिम महिलाओं का क्या होगा? मुसलमान कमज़ोर वर्गों की श्रेणी में आते हैं और उनके पास आरक्षण है ही नहीं.

वैसे हमारे देश में महिलाएं पूरे तौर कमज़ोर वर्ग की श्रेणी में ही आती हैं. इसलिए शुरुआत करनी चाहिए कि वे सत्ता और प्रशासन की मुख्यधारा में आएं. पर साथ ही रिज़र्वेशन की संपूर्ण नीति पर भी बहस होनी चाहिए कि इसमें कौन से संशोधन हों, जिससे समाज के सभी कमज़ोर, वंचित और पिछड़े वर्ग को ज़्यादा से ज़्यादा सामाजिक, प्रशासनिक और राजनैतिक हिस्सेदारी मिल सके. ऐसी कई चुनौतियां हैं जो मनमोहन सिंह सरकार के सामने आने वाले दिनों में आएंगी. जनता यही देखना चाहेगी कि इनका सामना करने के लिए उठने वाले क़दम जनता की आशाओं को पूरा करने की ओर जाते हैं, या इसे और निराश करते हैं. जनता को निराशा न मिले, इसकी आशा कम से कम अभी तो करनी चाहिए.

संपादक

editor.chauthiduniya@gmail.com

रवि किशोर

अल्पसंख्यकों को संविधान ने दिया है पूरा अधिकार

भारत सही मायनों में दुनिया के उन बहुभाषीय और जातिबहुल समाजों में है, जहां न केवल विविध धर्म, भाषा और संस्कृति के लोग रहते हैं, बल्कि दुनिया में मौजूद लगभग सभी मतों और धर्मावलंबी भी रहते हैं. भारतीय संविधान की रचना करने वाले इस तथ्य को जानते थे, इसलिए संविधान बनाने में काफी उदार रवैया अपनाया गया. संविधान में न केवल सभी धर्मों और विश्वास को समान अवसर दिया गया, बल्कि यह भी सुनिश्चित किया गया कि धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों को उनकी परंपरा और संस्कृति संरक्षित करने के लिए उपाय किए जाएं.

भारतीय संविधान को बनाते समय संविधान सभा के सदस्यों ने उसके विभिन्न बिंदुओं पर गंभीरता से चर्चा की. वैसे, 10 दिसंबर 1948 को विश्व के राजनीतिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण बदलाव हुआ, जब संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने मानवाधिकार की वैश्विक घोषणा की और अनुच्छेद 18 को अपनाया. अनुच्छेद 18 के अनुसार सभी लोगों को उसके विवेक, विचार और धर्म को लेकर स्वतंत्रता का अधिकार मिलना चाहिए. इसमें धर्म बदलने की स्वतंत्रता या फिर अपने धार्मिक विश्वास के हिसाब से पूजा, पढ़ाई या अभ्यास की स्वतंत्रता को शामिल किया गया. इसलिए जब हमारे संविधान को लिखा जा रहा था, तो संविधान सभा के सदस्यों ने महसूस किया कि नागरिकों को विचार, अभिव्यक्ति और धर्म की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए. इसके अलावा उसके नागरिकों को समान अवसर भी दिए जाने चाहिए और उनके साथ जाति, धर्म और लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए. हमारे संविधान निर्माता इससे भी सहमत थे कि धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा भी होनी चाहिए, ताकि उन्हें किसी चीज़ का भय न हो या बहुसंख्यक समुदाय और राज्य के द्वारा उन पर अत्याचार न हो.

> भारतीय संविधान को बनाते समय संविधान सभा के सदस्यों ने उसके विभिन्न बिंदुओं पर गंभीरता से चर्चा की. वैसे, 10 दिसंबर 1948 को विश्व के राजनीतिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण बदलाव हुआ, जब संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने मानवाधिकार की वैश्विक घोषणा की और अनुच्छेद 18 को अपनाया.

अल्पसंख्यकों को विशेष अधिकार समाज में असमानता उत्पन्न करने के लिए नहीं दिया गया, बल्कि समानता लाने के लिए, अल्पसंख्यकों को उनकी भाषा और संस्कृति को सुनिश्चित और संरक्षित करने के लिए दिया गया था. इसके अलावा हमारे संविधान निर्माताओं ने न्याय और समानता का क़ानून बनाने से पहले संविधान में विचार और धर्म की स्वतंत्रता का विशेष प्रावधान किया, जो अनुच्छेद 25 से 30 तक मौलिक अधिकार के रूप में बताए गए हैं.

इसके साथ ही वे लोग जो धार्मिक या भाषायी अल्पसंख्यकों की श्रेणी में आते हैं, उन्हें संविधान में अनुच्छेद 29 और 30 के तहत विशेष अधिकार दिए गए हैं. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 में अल्पसंख्यकों के लिए संस्कृति और शैक्षणिक अधिकार का प्रावधान किया गया है. संविधान के अनुच्छेद 29(1) के अनुसार किसी भी समुदाय के लोग जो भारत के किसी राज्य में रहते हैं या कोई क्षेत्र जिसकी अपनी आंचलिक भाषा, लिपि या संस्कृति हो, उस क्षेत्र को संरक्षित करने का उन्हें पूरा अधिकार होगा. नागरिकों को उसकी भाषा, संस्कृति इत्यादि को संरक्षित रखने के लिए संविधान में जो व्यवस्था की गई है, वह पूर्ण है. सुप्रीम कोर्ट ने माना कि किसी उम्मीदवार द्वारा अपने संसदीय क्षेत्र की भाषा को संरक्षित करने के लिए किया गया वादा भ्रष्ट और ग़लत नहीं है. यह प्रावधान जनप्रतिनिधित्व क़ानून 1951 के तहत है.

अनुच्छेद 30 (1) के तहत सभी अल्पसंख्यकों–चाहे धर्म या भाषा के आधार पर– को अपनी पसंद के आधार पर अपनी शैक्षिक संस्था को स्थापित करने का अधिकार है. संविधान में अल्पसंख्यक शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है. हालांकि केरल एजुकेशन बिल के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि यह कहना बहुत आसान है कि जो समुदाय 50 फीसदी से कम हो वह अल्पसंख्यक है, लेकिन महत्वपूर्ण सवाल यह है कि किसका 50 प्रतिशत. क्या यह 50 फीसदी पूरे भारत की जनसंख्या का होना चाहिए या उस राज्य का, जहां वे रहते हैं. संभवत: एक समुदाय राज्य के किसी हिस्से में केंद्रित हो सकता है, वह वहां बहुसंख्यक हो सकता है, लेकिन पूरे राज्य में वह अल्पसंख्यक हो सकता है. सुप्रीम कोर्ट निश्चित रूप से इस बिंदु पर विचार नहीं करता. हालांकि यह स्वीकार करना होगा कि अल्पसंख्यकों का निर्धारण उस विधान के द्वारा किया जाता है, जो ख़ुद अपंग है. अल्पसंख्यकों की स्थिति का निर्धारण मुख्य रूप से उस राज्य की कुल जनसंख्या के आधार पर होना चाहिए.

सुप्रीम कोर्ट की व्यवस्था के अनुसार अगर हिंदुओं के विभिन्न वर्गों और जातियों को संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत रखा जाए तो हिंदू विभिन्न वर्गों और जातियों में बंट जाएंगे और बहुसंख्यक नहीं रहेंगे. सुप्रीम कोर्ट ने 1976 में दिल्ली के आर्य समाज एजुकेशन ट्रस्ट बनाम डायरेक्टर एजुकेशन के केस में कहा कि धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक शब्द का प्रयोग सिर्फ़ धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए होना चाहिए, जैसे मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध और सिख इत्यादि. एक अल्पसंख्यक वर्ग कोई शैक्षणिक संस्था चलाने का दावा तभी कर सकता है, जब वह उसी के द्वारा स्थापित की गई हो. सुप्रीम कोर्ट ने अनुच्छेद 30 के संबंध में कहा कि कोई भी परोपकारी व्यक्ति जो अल्पसंख्यक समुदाय से संबंध रखता हो, अपने लिए कोई भी संस्था स्थापित कर सकता है. एसपी मित्तल बनाम भारतीय गणराज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि अनुच्छेद 30 के तहत लाभ के लिए जो दावा किया है, उस समुदाय को यह दिखाना होगा कि वह एक धार्मिक या भाषायी अल्पसंख्यक है और दूजे उसके द्वारा संस्था स्थापित की गई है. इन दोनों शर्तों को पूरा किए बिना दावा नहीं किया जा सकता है. संविधान के अनुच्छेद 30 के तहत अल्पसंख्यकों के विकास और रक्षा के लिए जो अधिकार दिए गए हैं, उसकी जांच इससे की जा सकती है कि उसका दावा सही है कि नहीं. क्रिश्चियन मेडिकल एसोसिएशन बनाम आंध्रप्रदेश राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने ज़ोर देते हुए कहा कि यह महत्वपूर्ण और आवश्यक है कि व्यवस्था कुछ इस तरह की हो जिससे लगे कि यह शैक्षणिक संस्था अल्पसंख्यकों की है. सेंट स्टीफेंस के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि अनुच्छेद 30 (1) का मतलब यह नहीं है कि अल्पसंख्यक अपने समुदाय के लोगों के फ़ायदे के लिए संस्था स्थापित नहीं कर सकता है. अल्पसंख्यकों को सिर्फ़ अपने फ़ायदे के लिए इस तरह की संस्था स्थापित करने का कोई हक़ नहीं है. कोर्ट ने पाया कि सभी शैक्षणिक संस्थाएं किसी भी समुदाय विशेष की हों, हमारे राष्ट्रीय जीवन के चरित्र को अपनाने वाली होनी चाहिए. साथ ही यह भी आवश्यक है कि हरेक शैक्षणिक संस्थान में विविध पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों की पर्याप्त उपस्थिति हो.

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं

feedback.chauthiduniya@gmail.com

संपादक महोदय,

इस बार अख़बार का कलेवर ज़रा बदला–बदला सा लगा. चुनाव के दौरान आपकी ज़ोरदार प्रस्तुति के बाद अब इस नए रूप से भी बहुत आशा रहेगी. ज़रा हट के कॉलम बहुत ज्ञानवर्धक लगा. मैं एक छात्र हूं, ऐसे में इस तरह कीजानकारी देने वाले कॉलम हमारे लिए बड़े काम के होते हैं. आशा है, इस तरह के कॉलम आगे भी देते रहेंगे.

मनीष कुमार सिंह
नार्थ कैंपस
दिल्ली विश्वविद्यालय

संपादक महोदय,

आपके अख़बार ने तो राहुल गांधी को उत्तर प्रदेश के अगले मुख्यमंत्री के तौर पर स्थापित ही कर दिया है. वैसे ऐसा होता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी. हमने कांग्रेस को सत्ता अच्छी सरकार के नाम पर सौंप दी है, लेकिन उन्होंने इसे राहुल गांधी की जीत का नाम दे दिया है. अब राहुल का मिशन यूपी कितना सफल होता है यह तो वक़्त ही बताएगा. आशा है कि आप इसी तरह उनके हर क़दम की पड़ताल करते रहेंगे. खेल का पन्ना रोचक लगा.

राजकुमार शर्मा
कानपुर

तालिबान ही नहीं हैं अकेला मुजरिम

ये लोग युद्ध के ही लायक हैं, क्योंकि उन्होंने हमारे संविधान को ख़ारिज़ किया है, क्योंकि उन्होंने उन मूल्यों को नकारा है जिन पर पाकिस्तान की स्थापना हुई थी, क्योंकि वे एक अलग न्यायिक व्यवस्था अनिच्छुक नागरिकों के गले उतारना चाह रहे हैं.

यह दलील लाहौर स्थित एक दैनिक के स्तंभकार की है और ज़ाहिर तौर पर कई इससे सहमत भी हैं. यह तर्क समझ में आने लायक और बिल्कुल स्पष्ट दिखता है. हालांकि, यह हमें उन तीनों कारणों पर विचार करने का भी मौका मुहैया कराता है, जिसकी वजह से आतंकियों के ख़िलाफ़ लड़ाई की शुरुआत हुई. वैसे तो वर्तमान हालात में यह भी एक निषेध को नकारने जैसा होगा, लेकिन हम पहले कारण से शुरुआत करें.

ये लोग युद्ध के ही लायक हैं, क्योंकि उन्होंने हमारे संविधान को ख़ारिज़ किया है. 1956 के संविधान को अस्तित्व में आने के दो वर्षों बाद ही अराजक तरीक़े से रद्द कर दिया गया था. 1970 के चुनाव में जो दल बहुमत से जीता–जिसे पाकिस्तान की संविधान सभा का दर्जा दिया गया था–को गद्दारों का गढ़ माना गया और जीत के कुछ ही महीनों बाद उनका सामूहिक संहार कर दिया गया. 1973 के संविधान को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया और जिस व्यक्ति ने खंडित पाकिस्तान की संविधान सभा में इसके लिए पर्याप्त समर्थन जुटा लिया था, उसे फांसी पर लटका दिया गया.

बाद के दिनों में यह भी देखा गया कि दो–तिहाई बहुमत से सत्ता संभालने वाले प्रधानमंत्री को सऊदी अरब भेज दिया गया और सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश को रावलपिंडी के सेना भवन में क़ैद कर दिया गया, जहां तत्कालीन सैन्य प्रमुख ने उनको परेशान–पामाल किया. उन्होंने सेनाध्यक्ष को विपरीत परिणामों की चेतावनी दी थी, अगर वह संविधान की राह पर चलते रहते तो.

ये लोग युद्ध के लायक हैं, क्योंकि उन्होंने उन मूल्यों को नकारा है, जिन पर पाकिस्तान की स्थापना हुई थी. आज पाकिस्तान की स्थापना के 63 वर्षों बाद भी पाकिस्तान के मूलभूत मूल्यों को लेकर संशय की स्थिति है. इतिहासकारों, राजनीति शास्त्रियों और राजनेताओं ने आधे दशक से भी अधिक समय से असफल तरीक़े से उन मूल्यों को खोजने की कोशिश की है. इन दिनों पसंदीदा जुमला जिन्ना का पाकिस्तान है, जिसे इन मूलभूत मूल्यों के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है.

जिन्ना के पाकिस्तान को बहुत सरलीकृत करने का ख़तरा उठाते हुए भी कहना होगा कि कम से कम यह एक सच्चा संघ होने वाला था, एक संवैधानिक गणराज्य होने वाला था और इसकी राजनीति बहुदलीय व्यवस्था पर आधारित होती. देश का संचालन एक संघ के तौर पर किया जाना था, जिसकी संवैधानिक इकाइयों को पर्याप्त अधिकार होते. संघ की भावना को स्वाधीनता के कुछ ही महीनों बाद तब धक्का लगा, जब पाकिस्तान के बहुसंख्यक बंगालियों को कहा गया कि पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा उर्दू होगी.

पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत (एनडब्ल्यूएफपी) की डॉ. ख़ान साहब की सरकार को अकारण ही हटा दिया गया, क्योंकि वह सत्ताधारी वर्ग से नहीं आते थे. इतना ही नहीं, सिंध के तत्कालीन मुख्यमंत्री (मुस्लिम लीग नीत सरकार के मुखिया) अयूब खुसरो को भी हटा दिया गया, क्योंकि उनके केंद्रीय सरकार के साथ मतभेद थे. इन सबसे स्वाधीनता के एक साल के अंदर ही तीन प्रांत नाखुश हो गए.

शासक दल को प्रायोजित करने की परंपरा ने लगभग संस्थागत रूप ले लिया, जिसने पार्टी–आधारित राजनीति से ऑक्सीजन छीन लिया. यह प्रथा अयूब ख़ान के समय से शुरू हुई, जिसे ज़िया–उल–हक़ और परवेज़ मुशर्रफ ने बखूबी निभाया. लोकप्रिय दलों को बखूबी धमकी और स्थानीय संभ्रांतों के नेटवर्क के घालमेल से किनारे किया गया और जिसे बाद के दिनों में ज़िया और मुशर्रफ ने बखूबी अपनाया.

और आख़िर में, वे युद्ध के ही लायक हैं क्योंकि वे एक अलग न्यायिक व्यवस्था अनिच्छुक नागरिकों के गले उतारना चाह रहे हैं. यहां हम बस एक उड़ती निगाह किसी भी मशहूर वक़ील के करियर पर डालें, तो पता चलेगा कि अनिच्छुक नागरिकों के गले क़ानूनी व्यवस्था उतारना पाकिस्तान के लिए आम बात है. जनरल ज़िया उल हक़ ने इसको नई उंचाइयों तक पहुंचाया, जब एक अंधी औरत को–जो सामूहिक बलात्कार का शिकार हुई थी–चार गवाह मुहैया कराने को कहा गया, या व्यभिचार के जुर्म में जेल की सज़ा भुगतने को कहा गया तो उसने सज़ा भुगती भी.

परवेज़ मुशर्रफ ने न्याय के अपने दृष्टिकोण से अनिच्छुक नागरिकों के गले क़ानून उतारने की घटनाओं की तो भरमार ही कर दी. प्रांतीय संवैधानिक व्यवस्था (पीसीओ) और क़ानूनी ढांचागत व्यवस्था (एलएफओ) ने देश की क़ानूनी व्यवस्था के साथ जमकर बलात्कार किया, जिसकी मिसाल पूरे दक्षिण एशिया में मिलनी मुश्किल है.

सेना पिछले 60 वर्षों से तीन घोषित युद्धों में लिप्त रही है, जिनमें उसे शर्मनाक हार मिली. सैन्य बजट स्वास्थ्य और शिक्षा दोनों पर होने वाले व्यय को मिला देने पर भी अधिक ही है. हमारी सेना के प्रमुखों ने दक्षिण एशिया के देशों की किसी भी सेना से अधिक बार सत्ता पर जबरन क़ब्ज़ा किया है. हमें इस बात को मान कर ख़ुद को भुलावा नहीं देना चाहिए कि हालिया सैन्य अभियान पर नागरिक प्रशासन का पूरा नियंत्रण है. सेना ख़ुद ही संकटों से घिरी है, और उन ख़तरों का मुक़ाबला करने में सहमी भी, जो राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए बेहद ख़तरनाक हैं. तालिबान के ख़िलाफ़ सैन्य अभियान का समर्थन उसी तरह का नहीं हो सकता, जैसे सेना घरेलू असंतोष से निबटती है.

स्वात में जारी कार्रवाई ज़ाहिर तौर पर पाकिस्तान में उग्र बहस को बढ़ावा दे रहा है. यह राजनीतिक शुचिता और सैन्य रणनीति पर भी सवाल उठाता है. यह कोई पहली बार नहीं है कि सेना ने ख़ुद पर राज्यविरोधी ताक़तों को निकाल–बाहर करने का दायित्व लिया है. पाकिस्तान का ऐतिहासिक संदर्भ हमें बताता है कि राजनीति में सेना का घालमेल और देश की नीति को तय करना देश के लिए हितकर नहीं रहा है.

मैं चूंकि तालिबान को पसंद नहीं करता और इसी वजह से देश की लगाम सेना के हाथों में सौंपने का समर्थन करूंगा, मुझे काफी कमज़ोर ज़मीन देता है, ख़ासकर इस मामले में कि पिछले छह दशकों से देश किस तरह से चल रहा है और शासन का भविष्य क्या है? हम अगर स्वात के विद्रोह को दबाने में सेना का समर्थन करते हैं तो किस आधार पर हम उस घटना की निंदा कर सकते हैं, जो पूर्वी पाकिस्तान में 1971 में हुआ था और सिंध में 1980 के दशक के–लोकशाही की वापसी– आंदोलन के दौरान बलूचिस्तान में घटी थीं. यूरोप में राज्य निर्माण की प्रक्रिया के बारे में बताते हुए रॉबर्ट बेट्स दलील देते हैं कि आधुनिक यूरोप में शुरुआती दौर में राजा उससे कहीं अधिक बुद्धिमान निकले, जितना ख़ुद उन्होंने अनुमान लगाया था. आज के समय में हम जिसे उदारवादी लोकतंत्र कहते हैं वह सदियों पुरानी उस व्यवस्था से निकला है जब हिंसा के लिए कुख्यात सम्राटों ने समाज के दूसरे हिस्सों के साथ एक कामचलाऊ शासन व्यवस्था स्थापित की. जब हम पाकिस्तानी तालिबान की भर्त्सना करते हैं तो हमें पाकिस्तानी फौज के उन विचारकों और रणनीतिकारों को नहीं भूलना चाहिए जिन्होंने धार्मिक जानकारी से लैस इन राजनीतिक ताक़तों को बढ़ावा दिया और उनका इस्तेमाल किया.

तालिबान के विरोधी उसे महज़ इस लिए ग़लत नहीं ठहरा सकते, क्योंकि वह इस खेल के संवैधानिक नियमों को नहीं मानता. तालिबान संविधान और पाकिस्तानी मूल्यों को नकारने के मामले में नए खिलाड़ी हैं. जो पाकिस्तान को एक संवैधानिक देश के तौर पर देखना चाहते हैं उन्हें महज़ तालिबान पर ही नहीं और भी बहुत चीज़ों पर नियंत्रण करना होगा.

इस्लामाबाद से एन. हैदर

feedback.chauthiduniya@gmail.com

जाएं पढ़ने विदेश...

एक वक़्त था जब विदेश जाना बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाती थी, लेकिन अब पूरा विश्व एक ग्लोबल विलेज में तब्दील हो चुका है. ग्लोबलाइज़ेशन से पूरे विश्व में वाद-विवाद का प्रसंग, तकनीकों का इस्तेमाल लगभग एक समान हो गया है. ज़ाहिर है, ऐसे में पढ़ाई का स्टैंडर्ड और तरीक़ा भी समान होना चाहिए. जिस प्रकार ग्लोबलाइज़ेशन ने जीवन के हर स्तर को छुआ है, पठन-पाठन भी इससे अछूता नहीं रहा है. ख़ास कर हाई-स्कूल के बाद की पढ़ाई, जिससे जीवन की दिशा निर्धारित होती है. ऐसे में ज़रूरी है कि सभी को एक समान शिक्षा दी जाए. पिछले कुछ वक़्त से भारतीय छात्रों में यह ट्रेंड बन गया है कि वे विदेश जाकर शिक्षा प्राप्त करें, लेकिन कुछ छात्र अब भी ऐसे फ़ैसले करने में हिचकिचाते हैं. दरअसल सवाल यह है कि जब उन विषयों की शिक्षा अपने देश में भी दी जा रही है तो विदेश क्यों जाएं? तो जवाब यह है कि नए माहौल की समझ विकसित करने के अलावा अंतरराष्ट्रीय शिक्षा की ज़रूरत भविष्य में नौकरी के वक़्त पड़ती है. पहले हमारे देश में विदेशों में दी जा रही शिक्षा की तरह बेहतरीन प्रणाली की शिक्षा का प्रावधान बिल्कुल कम था, और अब विदेशी शिक्षा का प्रसार इसलिए हो रहा है कि जिससे विदेशी शिक्षा का पूर्णतावादी आयाम सीखा जा सके. इससे व्यक्ति के माहौल के हिसाब से ढलने की और हर तरह के माहौल में काम करने की शक्ति बढ़ जाती है. इसी वजह से विदेशी शिक्षा काफी महत्वपूर्ण हो गई है. कई कंपनियां अपने ब्रांच विदेशों में खोलती हैं. इस तरह की कंपनियां वैसे लोगों को प्राथमिकता देती हैं जो अपने देश के अलावा विदेश में भी काम करने में पूरी तरह सक्षम हों, वहां के माहौल से जुड़ पाएं और कंपनी के लिए बेहतरीन काम कर पाएं. ये लोग ग्लोबल जॉब मार्केट में आदर्श एम्प्लॉयी साबित होते हैं. विश्व के सबसे शक्तिशाली देश अमेरिका के लोग भी एशिया और यूरोपीय देशों में जाकर पढ़ाई करते हैं. इसका मूल कारण यह है कि वे जानना चाहते हैं की वहां का आर्थिक तंत्र किस प्रकार काम करता है. इसके साथ ही वे वहां के लोगों के मानसिक और सामाजिक परिदृश्य को समझना चाहते हैं, जिससे वे समझ पाएं कि अमेरिका में काम कर रहे इन देशों के लोगों से अच्छी तरह काम किस प्रकार ले सकें. इसे एक तरह का जॉब मैनेजमेंट कहते हैं जिसकी ज़रूरत औसतन हर देश में हर प्रकार की कंपनियों को है. भारत के अधिकतर शिक्षा संस्थानों में इंटरनेशनल एजुकेशन पर ज़ोर दिया जा रहा है.

पढ़ाई के फ़ायदे

भारतीय शिक्षा प्रणाली के संस्थानों के मुक़ाबले विदेश में विषयों की अधिकता है. इससे अपनी क़ाबिलियत और रुचि के अनुसार विषय का चुनाव आसानी से किया जा सकता है. कुछ ख़ास कोर्सेस जैसे पब्लिशिंग स्टडीज़, कन्ज़्यूमर प्रोडक्ट मैनेजमेंट स्टडीज़, चेंज मैनेजमेंट, फुटबॉल मैनेजमेंट, डेवलपमेंटल स्टडीज़, ग्लोबल बायो-डायवर्सिटी, सिक्यूरिटी स्टडीज़, इंटरनेशनल बिज़नेस, हेल्थ प्रोमोशन, करियर काउंसिलिंग, वाइल्ड लाइफ मैनेजमेंट, गोल्फ कोर्स मैनेजमेंट इत्यादि केवल विदेश से ही किए जा सकते हैं, क्योंकि इनकी पढ़ाई भारत में नहीं होती है. ज़्यादातर फ्रंटियर कोर्सों की शुरुआत भी विदेश में ही हुई है. यदि कोई ख़ास कोर्स करने की इच्छा होती है और उसका अता-पता देश में कहीं नहीं मिलता तो अधिक जानकारियों के साथ विदेश की ओर रुख़ कर सकते हैं.

वृहत परिदृश्य

विदेशों में करियर के विकल्प ज़्यादा हैं. साथ ही विश्वविद्यालयों की संख्या विदेश में अधिक हैं. इनमें से कई विश्वविद्यालय तो आपकी पिछली पढ़ाई को लेकर काफी उदारवादी रवैया अपनाते हैं. उदाहरण के तौर पर इकोनॉमिक्स में काफी पढ़ाई कर लेने के बाद यदि आप केमिकल इंजीनियरिंग पढ़ना चाहते हैं तो वहां आपकी इस इच्छा के लिए भी विकल्प मौजूद होते हैं.

दोहरी डिग्री के विकल्प

हम सब में से कइयों की विदेशी विश्वविद्यालयों में काफी दिलचस्पी रहती है. वहां का फ़ायदा यह भी है कि एक कोर्स पढ़ते हुए दूसरे कोर्स में भी दाख़िला लेकर पढ़ाई की जा सकती है. मान लें कि आप मनोविज्ञान और वकालत दोनों ही पढ़ना चाहते हैं, तो आपको दोनों विषयों में डिग्री एकसाथ मिल जाएगी.

विकल्प

विदेश में भारतीय विद्यार्थियों के लिए बहुआयामी विकल्प मौजूद हैं. विश्व के कई देश भारतीय छात्रों को लुभाने में प्रयत्नशील हैं. आज के विविध विकल्पों में छात्र ब्रिटेन, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, सिंगापुर इत्यादि में से चुन सकते हैं. कई विदेशी विश्वविद्यालय भारतीय शिक्षण संस्थानों से गठजोड़ कर रहे हैं. इससे वे भारत के किसी शिक्षण संस्थान से संपर्क करके अपने विश्वविद्यालय की कोर्स संरचना का प्रारूप तय करके यहां पढ़ रहे विद्यार्थियों को अपने विश्वविद्यालय की डिग्री देते हैं, जिसे आमतौर पर हम डिस्टेंस एजुकेशन यानी पत्राचार के नाम से जानते हैं. दूसरा यह कि विदेशी विश्वविद्यालय भारतीय संस्थान के साथ जुड़कर कोर्स के आधे वक़्त की डिग्री देश में तो आधे वक़्त की डिग्री विदेश में रहकर उनके मुख्य संस्थान में करने की छूट देते हैं. ये दोनों ही प्रयास इसलिए किए जा रहे हैं ताकि अंतरराष्ट्रीय शिक्षण प्रणाली का विस्तार भारत में भी हो सके.

कैसे जाएं विदेश

सबसे पहले भारत सरकार की ओर रजिस्टर्ड एजेंसियों के बारे में पता लगाएं. फिर किसी कंसलटेंट के पास जाएं. भारत सरकार के पासपोर्ट विभाग से ही पासपोर्ट बनवाएं. विदेशों में भाषा और अन्य जानकारियों पर ज़ोर दिया जाता है, जिसके लिए टॉयफेल, आईईएलटीएस, जीमैट, जीआरई की परीक्षाएं देनी होती हैं. उसमें सेलेक्शन के बाद ही विद्यार्थी योग्य माना जाता है. ये परीक्षाएं ऑनलाइन होती हैं. इन परीक्षाओं में चयनित होने के बाद वीज़ा बनवाना पड़ता है.

ध्यान रखें

एजेंट के ज़रिए वीजा बनवाने से बेहतर है कि संबंधित देश के दूतावास से ख़ुद जाकर वीज़ा बनावाएं. इससे धोखाधड़ी से बचा जा सकता है, चूंकि यह वीज़ा कॉलेज में दाख़िले के प्रमाणित सर्टिफिकेट से बनते हैं तो इसमें जाली सर्टिफिकेट बनवाकर फ़र्ज़ी एजेंसियां पैसे लूटती हैं और ग़लत सर्टिफिकेट दिखाकर बनवाए वीज़ा पर जाने से वहां जाकर विद्यार्थी धोखा खा जाते हैं, क्योंकि उनका एडमिशन अमुक विश्वविद्यालय में हुआ ही नहीं होता है.

रीतिका सोनाली
ritika.chauthiduniya@gmail.com

कैसे करें सही कॉलेज का चुनाव

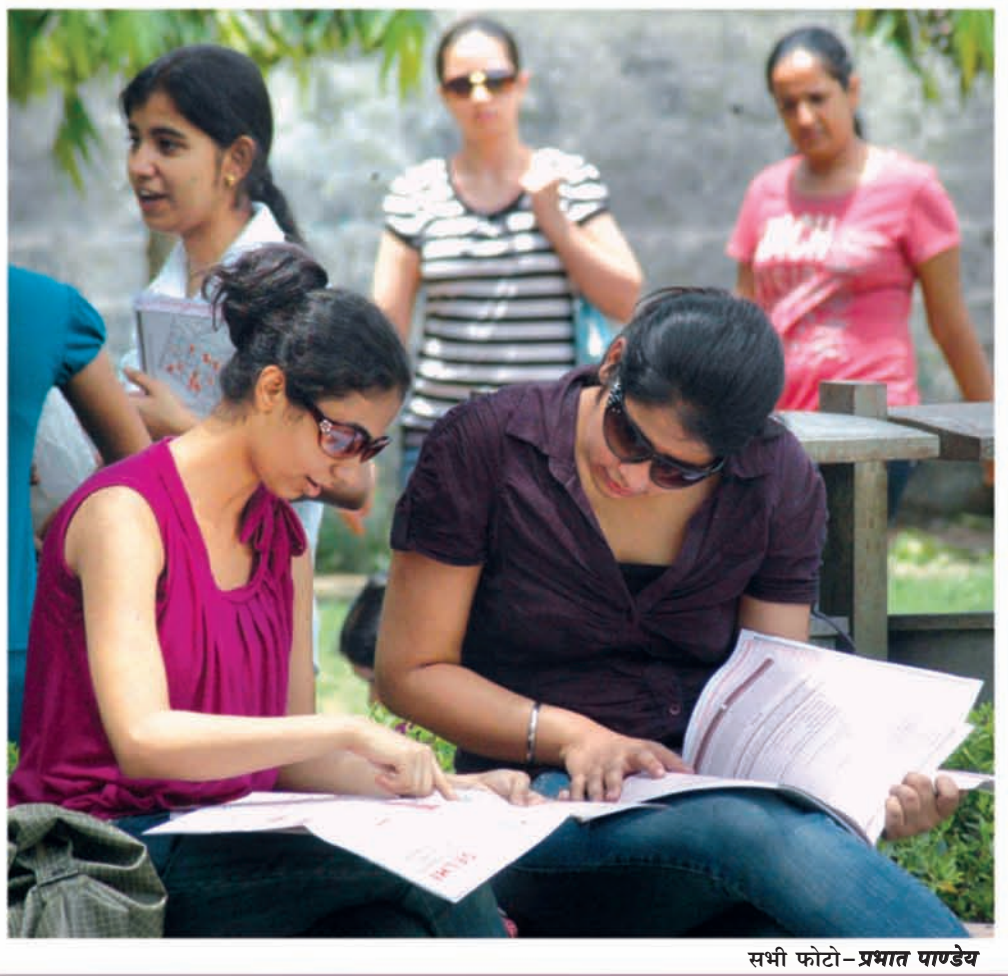

सभी फोटो-**प्रभात पाण्डेय**

बारहवीं के बाद विद्यार्थियों के सामने सबसे बड़ी समस्या सही कॉलेज का चुनाव करने की होती है, क्योंकि उनकी प्रोफेशनल ज़िंदगी की शुरुआत यहीं से होती है. इसलिए जिस कॉलेज में आप प्रवेश लेना चाहते हैं उसके बारे में जानकारी प्राप्त करना बहुत ही ज़रूरी है. कॉलेज चुनते वक़्त यह याद रखना चाहिए कि आपको उसी कॉलेज में अगले तीन साल से लेकर छह साल तक का समय गुज़ारना है. लिहाज़ा आपकी शिक्षा, अनुभव और उसका ब्रांड आपके करियर के साथ हमेशा जुड़ा रहेगा. कॉलेज का चुनाव करना विद्यार्थियों के लिए एक जटिल समस्या है, लेकिन यह सवाल ऐसा भी नहीं कि जिसका हल ढूंढा नहीं जा सकता. अगर आप कॉलेज का चुनाव करते वक़्त इन बातों का ध्यान रखें, तो आपको अपने पसंद का कॉलेज चुनने में सहूलियत महसूस होगी.

जगह

कॉलेज का चुनाव करते समय जगह का विशेष ध्यान रखना चाहिए. क्या आप अपने घर के पास वाले कॉलेज में दाख़िला लेना चाहते हैं या फिर जिस शहर में रहते हैं उसी शहर के किसी कॉलेज में. इसके लिए समय और सुविधा का विश्लेषण करना बहुत ही महत्वपूर्ण है. क्या आप अपना घर और शहर इसलिए छोड़ रहे हैं कि वह आपके पसंद के विश्वविद्यालय से कम महत्वपूर्ण हैं. इसके लिए आपको घर ऐसा चुनना चाहिए जो आपके मनचाहे कॉलेज के नज़दीक हो, न कि आप अपने घर के नज़दीक, पर पसंद न आने वाले कॉलेज को चुनें.

ब्रांड नाम

आपके कॉलेज का ब्रांड क्या है, यह महत्वपूर्ण है. दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज की तीसरे वर्ष की छात्रा स्नेहा पलित का कहना है कि कुछ वर्ष पहले आप से कोई यह पूछने वाला नहीं था कि किस कॉलेज में आप दाख़िला लेना चाहते हैं. वह सिर्फ़ आपके काम में रुचि रखते थे. लेकिन अब ऐसा नहीं है. कॉलेज से निकलने के बाद आप किस तरह की कंपनी और किस प्रकार की नौकरी पाते हैं यह आपके कॉलेज के नाम पर भी निर्भर करता है. इसलिए उसी कॉलेज में दाख़िला लें जिसका ब्रांड वैल्यू अच्छा हो. इससे अपने आपको साबित करने में आपको काफी कम समय लगेगा. अब सवाल यह है कि इसका निर्धारण आप कैसे करेंगे. इसके लिए एक आसान-सा रास्ता है. आप ऑनलाइन उस कॉलेज का कट-ऑफ देखें या फिर कॉलेज का प्रॉस्पेक्टस देखें. जिसका कट-ऑफ जितना अधिक रहेगा उसका ब्रांड वैल्यू उतना अधिक होगा. कट-ऑफ एकेडमिक क्षेत्र की क़ीमत की तरह है जो यह बताता है कि आप कितनी हैसियत रखते हैं और आप दूसरे लोग की नज़रों में क्या क़ीमत रखते हैं.

विषय

बहुत पहले से यह से एक चर्चा का विषय रहा है. आप जिस कॉलेज में जिस विषय में दाख़िला लेना चाहते हैं अगर आपको वहां वह विषय नहीं मिले जो आप क्या करेंगे. क्या आप किसी कॉलेज में महज़ इसलिए दाखिला लेते हैं कि वह आपको वह कोर्स उपलब्ध करा रहा है, जो चाहते हैं.

फीस

वर्तमान समय में कॉलेज में पढ़ना काफी महंगा हो गया है. आर्थिक सहायता और छात्रवृत्ति जितनी दूसरे देशों में सामान्य है, भारत में यह उतनी सामान्य नहीं है. अगर आपकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है या फिर आप लोन नहीं लेना चाहते हैं तो आप के लिए सरकारी कॉलेज अच्छे रहेंगे. इतना ही नहीं, अगर आपने अच्छे अंक पाए हैं, तब आपको और कम पैसे देने होंगे.

सहपाठी

तमिलनाडु के शहरों और उसके सुदूर क्षेत्र में स्थित कॉलेजों में पढ़ रहे छात्रों की तुलना की जाए तो दोनों कॉलेजों के छात्रों में अंतर होगा. यह स्थिति तब है जब दोनों का भौगोलिक क्षेत्र एक ही है. ऐसा इसलिए होता है कि एक कॉलेज के नियम और क़ानून दूसरे कॉलेज से भिन्न और अलग होते हैं. लिहाज़ा दाखिला लेने से पहले आप उस कॉलेज के बारे में पता कर लें कि वह कितना उदार या कठोर है. इसके लिए आपको किसी सीनियर की मदद लेनी होगी.

अन्य गतिविधियां

कुछ कॉलेजों में दूसरों की अपेक्षा स्पोर्ट्स और ऑडिटोरियम जैसी गतिविधियों की सुविधा बेहतर होती है. कॉलेज के अंदर की संस्थाओं की स्थिति और गुणवत्ता अलग-अलग हो सकती है. किसी प्रतिष्ठित कॉलेज की वाद-विवाद सोसायटी का स्तर बहुत कम हो सकता है. इस मसले पर आपको चूज़ी होना होगा. अगर वाद विवाद का माहौल वहां अच्छा नहीं है तो आप इसमें प्रशिक्षित नहीं हो सकते हैं. यह बात बास्केट वॉल से लेकर अभिनय तक में लागू होती है. इसके अलावा नियम और व्यवहार हरेक कॉलेज में अलग हो सकते हैं. श्वेताभ सिंह जो अपने कॉलेज में नाटकों के आयोजन और उनमें अभिनय करने में काफी दिलचस्पी लेते हैं, का कहना है कि जब आप नाटकों के मंचन के दौरान क्लासेज मिस करते हैं तो कुछ कॉलेज ऐसे हैं जो क्षतिपूर्ति करते हैं. जबकि कई दूसरे कॉलेज आपकी उपस्थिति को अस्वीकार कर देते हैं.

फैकल्टी

आप को एक चीज़ और याद रखना होगा कि प्रतिष्ठित संकाय को अच्छे संकाय में गिना जाना ज़रूरी नहीं है. किसी चीज़ की अच्छी जानकारी और उसे अच्छी तरह से पढ़ाना दो अलग चीजें हैं. किस कॉलेज में अच्छे संकाय हैं, इसकी जानकारी आप अपने सीनियर्स से ले सकते हैं. जिन्होंने कोर्स किया हो. उन्हें किस कॉलेज का संकाय अच्छा लगता है, इसका पता चल ही जाता है.

अगर आप ईसीए (एक्स्ट्रा करिकुलर एक्टिविटीज़) करना चाहते हैं तो सबसे पहले उसके बारे में आप अपने सीनियर्स से पूछिए. क्योंकि उन्हें इसकी अधिक जानकारी रहती है. कुछ कॉलेजों में ईसीए का कोटा रहता है. अगर आपने अच्छे अंक प्राप्त नहीं किए हैं तो इसके ज़रिए आप उस कॉलेज में दाख़िला पा सकते हैं. कुछ कॉलेजों में किसी जाति-धर्म विशेष के लिए भी कोटा होता है जैसे सेंट स्टीफेंस में 50 फीसदी कोटा ईसाइयों के लिए है. कौन-सा कॉलेज आपका है, इस पर विचार आप ही को करना है. आपके लिए कोई दूसरा इस विषय पर नहीं सोचेगा. हां, सलाह दे सकता है. इस के लिए सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि ख़ुद से पूछिए कि आप क्या करना चाहते हैं. इस मसले पर बिल्कुल स्पष्ट हो जाइए कि कौन-सा करियर अच्छा रहेगा. अगर आप ने सोच लिया है कि समाजशास्त्री बनना है, तो आप सूची में उसी कॉलेज के बारे में जानकारी हासिल करें, जहां समाजशास्त्र की पढ़ाई अच्छी हो. अगर मनोचिकित्सक बनना है तो उसके अनुसार ही कॉलेज का चुनाव करें.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

बाघ विहीन होगा भविष्य का मध्यप्रदेश

संध्या पांडे

मध्यप्रदेश से अब एक और ताज छीने जाने की तैयारी पूरी हो चुकी है. राज्य के वन विभाग की लापरवाहियों के चलते मध्यप्रदेश अब बाघ विहीन होता जा रहा है. पन्ना टाइगर रिज़र्व में एक भी बाघ न होने की ख़बर ने सनसनी फैली हुई है. आश्चर्य यह है कि राज्य का वन विभाग जहां स्वयं इस बात से अंजान है, वहीं प्रदेश में सर्वाधिक बाघों की संख्या के दावों पर भी अब प्रश्नचिह्न लग गया है. अभयारण्यों में निरंतर हो रही बाघों की मौत मध्यप्रदेश को बाघ विहीन करती जा रही है.

प्राप्त रिपोर्टों के अनुसार मध्यप्रदेश में वर्तमान में 300 बाघ मौजूद हैं. यह संख्या देश में सर्वाधिक बताई जाती है. इसके बाद क्रमश: कर्नाटक, उत्तराखंड, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु का नंबर आता है. मध्यप्रदेश में बताई गई 300 बाघों की संख्या में काल्पनिक 34 बाघ भी शामिल हैं, जिन्हें पन्ना टाइगर रिजर्व में विलुप्त पाया गया है. बाघों की पिछली गणना वर्ष 2007 में की गई थी. केंद्र सरकार ने पन्ना रिज़र्व में बाघों की संख्या मापने के लिए एक समिति भेजी थी, जिसने जांच के बाद प्रस्तुत आंकड़ों में यह सनसनीखेज खुलासा किया कि पन्ना में बाघ हैं ही नहीं. इसके बाद मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री द्वारा तथ्यों की वास्तविकता जानने के लिए एक अन्य जनसमिति का गठन किया गया. राज्य सरकार ने इसके साथ ही कान्हा, पन्ना और माधवगढ़ के क्षेत्र संचालकों को भी कार्यमुक्त कर दिया है.

पन्ना के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में बाघों की संख्या स्थिर बताई जा रही है. इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर की रिपोर्ट के अनुसार विश्व में अभी 3402 से 5140 की संख्या में बाघ हैं, जिनमें से सबसे अधिक 1411 भारत में हैं. सरकारी आंकड़ों के मुताबिक कान्हा में 89, पांडवगढ़ में 47, सतपुड़ा में 39, पेंच में 33, और पन्ना में बाघों की संख्या 24 है. बाघ संरक्षण के नाम पर मध्यप्रदेश में तस्करी की गतिविधियां आम हैं. राष्ट्रीय वन विभाग के अधिकारी एवं कर्मचारियों के साथ मिलीभगत कर इन बाघों का अवैध शिकार करने की घटनाएं आम हो चुकी हैं. पन्ना और कान्हा तो बाघों के अंगों की तस्करी के प्रमुख केंद्र बन चुके हैं.

मध्यप्रदेश सरकार द्वारा बाघों के संरक्षण के लिए चलाई गई सभी योजनाएं महज़ काग़ज़ी साबित हुई हैं. बाघ संरक्षण के नाम पर वन विभाग के अधिकारियों ने राजकीय कोष को जमकर लूटा है. यही कारण है कि बुनियादी सुविधाओं के अभाव में मध्यप्रदेश बाघ विहीन होने की दिशा में अग्रसर है. वर्तमान में भी स्थितियां बहुत अच्छी नहीं बताई जा सकती. केवल मध्यप्रदेश के वन विहार में ही 15 बाघ, पांच तेंदुए और तीन सिंह की मौत हो चुकी है. सबसे अधिक मौतें 12 फरवरी 2005 से अभी तक हुई हैं. ये हालात तब हैं जब 2007 की गणना में बाघों की संख्या पहले से आधी भी नहीं रह गई थी. जहां 2001-02 में राज्य में 710 बाघ थे, वहीं 2007 की गणना में महज़ 300 बाघ ही बचे थे. अब उनकी संख्या बढ़ने के बजाय और घटती जा रही है. अगर यह इसी तरह जारी रहा तो जल्द ही भारत का सबसे अधिक बाघ जनसंख्या वाला प्रदेश बाघविहीन हो जाएगा. बाघों की मौत का सिलसिला यदि इसी तरह निरंतर जारी रहा तो मध्यप्रदेश में बाघ केवल सरकारी विज्ञापनों में पहचान रखने वाला जंतु हो जाएगा, जिसे वास्तविकता में देख पाना या उसका अहसास कर पाना असंभव हो जाएगा. अगर कोई उपाय नहीं किया गया तो हिंदुस्तान का दिल बाघों से ख़ाली हो जाएगा.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

बाघों की संख्या
(स्रोत बाघ गणना)

वर्ष	भारत	मध्य प्रदेश
1972	1827	457
1979	3017	529
1984	3959	786
1989	3854	985
1993	3750	912
1997	3455	927
2001-02	3642	710
2007	1411	300

सभी फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

संयुक्त राष्ट्र की एजेंसी कर रही है भारतीय नक़्शे से खिलवाड़

श्री कृष्ण की कहानी जानने वाले पूतना को कभी भूल नहीं सकते. सब जानते हैं कि पूतना ने दूध पिलाने के बहाने कृष्ण को ज़हर देने की कोशिश की थी. भले ही उसका बाहरी उद्देश्य नेक था, लेकिन उसका असली मक़सद बहुत ख़तरनाक था. अगर वह सफल होती तो उसका परिणाम भी भयानक होता. ख़ैर, कृष्ण तो ईश्वरीय अवतार थे, इसलिए बच गए. लेकिन अब एक और पूतना भारत के दरवाज़े पर दस्तक दे रही है. कहने को तो इसके इरादे भी नेक हैं, लेकिन इन इरादों के बहाने वह भारत की अखंडता और संप्रभुता से खेल रही है. यह पूतना है एड्स के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए बनाई गई संयुक्त राष्ट्र की संस्था-यूएनएड्स.

यूएनएड्स इन दिनों भारत में एड्स के ख़िलाफ़ काम कर रही है. उसकी वेबसाइट पर भारत के नक़्शे को देखें तो उसे बड़े ही ग़लत तरीक़े से दिखाया गया है. नक़्शे में भारत के कई अभिन्न हिस्सों को नहीं दिखाया गया है. जम्मू-कश्मीर और उत्तर-पूर्व के हिस्सों को भारत के नक़्शे में दिखाया ही नहीं गया है. जब आप इस नक़्शे को पूरा खोलते हैं तो नक़्शा तो पूरे भारत का आ जाता है लेकिन ध्यान से देखें तो उसमें भारत की अंतरराष्ट्रीय सीमा जम्मू-कश्मीर से पहले ही ख़त्म हो जाती है. उसके बाद एक टूटी हुई लाइन जम्मू-कश्मीर की सीमा दिखाती है. साफ है कि इस नक़्शे में भारत की अंतरराष्ट्रीय सीमाओं को ग़लत तरीक़े से प्रस्तुत किया गया है. हालांकि कुछ साल पहले यह स्थिति और भी अजीब थी. यूएनएड्स के 2006 के नक़्शे में जम्मू-कश्मीर को भारत से बिल्कुल अलग दिखाया गया था. इस मुद्दे पर भारतीय संसद में बहस भी हुई और उसके बाद नक़्शे को बदल दिया गया. हालांकि बदला गया नक़्शा पहले नक़्शे से भी ज़्यादा ग़लत था, क्योंकि उसमें भारत के कई भागों को दिखाया ही नहीं जा रहा था. इसके बाद संसद में फिर यह मामला उठा. तब नक़्शे को फिर बदल दिया गया. इस बार उसमें भारत तो पूरा नज़र आ रहा था, लेकिन उसकी अंतरराष्ट्रीय सीमा अमृतसर के थोड़ी ऊपर जाकर ही ख़त्म हो जा रही थी. इस नक़्शे को भी बदला गया और वर्तमान नक़्शे को लाया गया.

भारत के नक़्शे में से जम्मू-कश्मीर को बाहर रखने का यह एजेंडा संयुक्त राष्ट्र की कई एजेंसियों का है. विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूएनएड्स के क्षेत्रीय नक़्शे में भी यह राज्य भारतीय संघ के नक़्शे से अलग नज़र आता है. यूएनएड्स के मुताबिक जम्मू-कश्मीर इलाक़े से संबंधित कोई आंकड़ा उसके पास उपलब्ध नहीं है, जबकि यूएनएड्स को पूरे भारत में काम करने की छूट है और इसमें जम्मू-कश्मीर भी शामिल है. भारत के राष्ट्रीय एड्स कार्यक्रम को चलाने वाली संस्था राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन के सर्वेक्षणों में जम्मू-कश्मीर के आंकड़े मौजूद हैं और साफ है कि भारत में एड्स की रोकथाम और नियंत्रण से जुड़ीं सभी गतिविधियां राज्य में भी चल रही हैं. भारत के नक़्शे को ग़लत तरीक़े से दिखाने का यह कोई पहला मामला नहीं है. पड़ोसी देशों पाकिस्तान और चीन से कुछ क्षेत्रों को लेकर विवाद रहा है. जहां पाकिस्तान ने पाक-अधिकृत और बाक़ी कश्मीर पर कई बार हक़ जताया है, वहीं चीन कई बार सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश को अपने हिस्से के तौर पर मानचित्र में दिखा चुका है. भारत सरकार ने इन दावों का ज़ोरदार विरोध हमेशा किया है. पड़ोसी देशों से सीमा विवाद एक अलग बात है, लेकिन जब संयुक्त राष्ट्र की एजेंसी ऐसा करे तो मामला गंभीर हो जाता है और अंतरराष्ट्रीय महत्व का बन जाता है. यूएनएड्स कोई अकेली संस्था नहीं है, यह संयुक्त राष्ट्र की कई एजेंसियों का मिला-जुला संगठन है. इस संगठन के द्वारा हमारी सीमाओं का ग़लत प्रस्तुतीकरण साफ तौर पर भारत की संप्रभुता के ख़िलाफ़ है. भारतीय क़ानून में कोई भी व्यक्ति या संस्था भारत के नक़्शे के साथ छेड़छाड़ करने पर दंड की भागी है. यह भारत के क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट (23) 1961 के तहत अपराध है. हालांकि कोई अदालती क़दम उठाने के लिए सरकार की ओर से शिकायत ज़रूरी है. हालांकि यह मुद्दा कई बार संसद में उठ चुका है (लोकसभा में रघुनाथ झा और राज्यसभा में मुरली मनोहर जोशी के द्वारा यह मुद्दा उठाया जा चुका है) लेकिन अभी तक सरकार ने कोई पहल नहीं की है. यहीं कई सवाल खड़े होते हैं. क्या भारतीय नेतृत्व इन बाहरी एजेंसियों के ख़िलाफ़ बेबस है?

क्या उसमें इस मुद्दे को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उठाने की इच्छाशक्ति का अभाव है? अगर ऐसा है तो यह बड़े अफसोस की बात है, क्योंकि यह मुद्दा महज़ किसी नक़्शे का ही नहीं बल्कि हमारे देश की संप्रभुता और कूटनीतिक हैसियत का भी है. हर दिन इस अधूरे नक़्शे के प्रदर्शन के साथ ये भी खंड-खंड हो रही हैं.

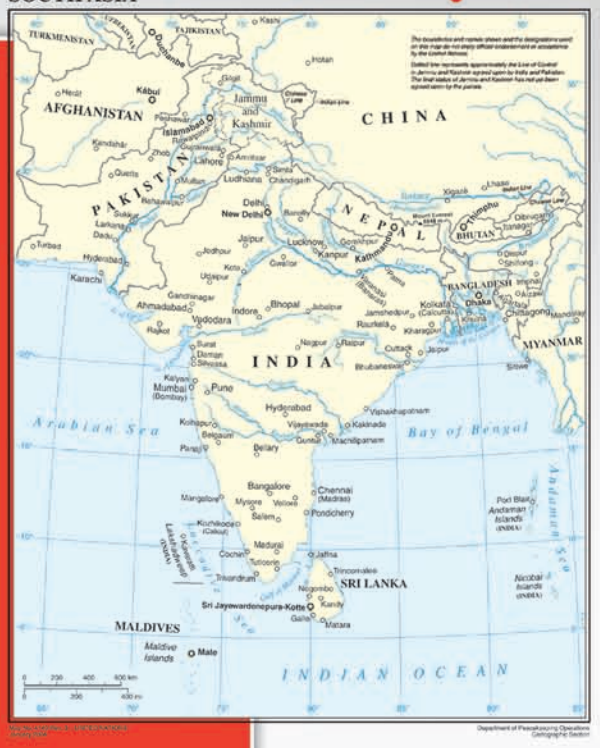

संयुक्त राष्ट्र की संस्था यूएनएड्स इन दिनों भारत में एड्स के ख़िलाफ़ काम कर रही है. उसकी वेबसाइट पर भारत के नक़्शे को देखें तो उसे बड़े ही ग़लत तरीक़े से दिखाया गया है. नक़्शे में भारत के कई अभिन्न हिस्सों को नहीं दिखाया गया है.

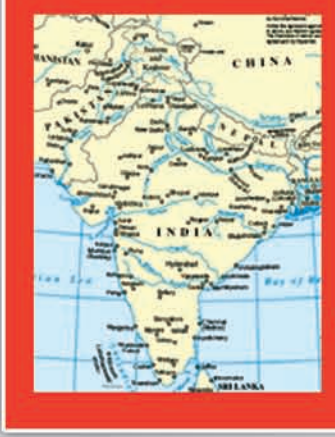

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मुस्लिमों के ज़ख़्म पर मरहम की कोशिश

दुनिया भर के डेढ़ सौ करोड़ मुसलमानों को दिए अपने संदेश में अमेरिकी राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा ने कहा कि पश्चिमी दुनिया और इस्लामिक जगत को अपनी पुरानी रंजिश भूलनी चाहिए. साथ ही आपसी रिश्तों को सुधारने के लिए एक नई शुरुआत करने की ज़रूरत है. ओबामा की यह पहल और उनका लहजा ज़ाहिर तौर पर पहले के अमेरिकी राष्ट्रपतियों से अलग था और उन्होंने इस रिश्ते की नींव रखने की शुरुआत इस्लामिक देशों को पूरी इज़्ज़त देते हुए की.

बराक ओबामा के भाषण की दुनियाभर में वाहवाही भी हुई और आलोचना भी. कुछ आलोचकों का मानना है कि इस्लामिक देशों के लिए अमेरिका की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और यह महज़ रिश्तों से कुछ हद तक कटुता को कम करने की कोशिश है. हालांकि ओबामा के भाषण में अमेरिका की नई नीतियों का कोई जिक्र नहीं था, लेकिन उनकी पहल को पूरी तरह से नकार देने से पश्चिमी देशों से इस्लामिक देशों के संबंध सुधरने की उम्मीद ज़रूर कम हो जाएगी. साथ ही वे रास्ते भी बंद हो जाएंगे जो इस भाषण के फलस्वरूप खुल सकते हैं. राष्ट्रपति बराक ओबामा ने ख़ुद क़बूल किया कि महज़ एक भाषण से सदियों पुराने अविश्वास को ख़त्म नहीं किया जा सकता है. वैसे उन्होंने जिस बिना पर रिश्तों को सुधारने और साझा चुनौतियों का एक साथ मुक़ाबला करने की जो बात कही वह यक़ीनी तौर पर पहले के अमेरिकी राष्ट्रपतियों की उस नीति से अलग है जिसमें यह साफ कहा जाता था कि या तो आप अमेरिका के दोस्त हैं, या उसके दुश्मन. साझा चुनौतियों के लिए एकमत गठजोड़ बनाने की अमेरिकी कोशिश भूमंडलीकरण की वास्तविकता भी है. जहां अमेरिकी शक्ति धीरे-धीरे प्रभावहीन हो रही है.

काहिरा विश्वविद्यालय में दिए अपने भाषण में बराक ओबामा की यह पहल कई मामलों में महत्वपूर्ण है, जहां वह इस्लामिक देशों तक सीधे अपनी बात पहुंचाना चाहते हैं. इससे पहले राष्ट्रपति पद संभालने के तुरंत बाद ओबामा ने कहा कि एक-दूसरे के सम्मान और एक-दूसरे की ज़रूरतों को आधार बनाते हुए रिश्ते क़ायम करने की ज़रूरत है. यही बात एक बार फिर सऊदी अरब के टेलीविज़न चैनल अल-अरेबिया पर दो-हराई. इसके बाद नौरोज़ के मौके पर ईरान को बधाई देने के लिए अपने रिकॉर्डेड संदेश में ओबामा ने आपसी सहयोग की अपील की, जिसे उन्होंने तुर्की की संसद में दिए अपने भाषण में भी दुहराया. पारदर्शी कूटनीति के इन प्रयासों और काहिरा में ओबामा के भाषण के बहुआयामी मक़सद हैं. पहला तो यह कि दुनिया भर के मुसलमानों के बीच अमेरिका की वह छवि सुधारने की कोशिश की जाए, जो पूर्व राष्ट्रपति बुश के काल में काफी बिगड़ गई थी. दूसरे, वह माहौल पैदा करने की कोशिश जिसमें मध्य एशिया में शांति प्रक्रिया को एक बार फिर से शुरू किया जा सके. मुसलमानों के साथ सीधे संवाद कर उस ताक़त को कमज़ोर किया जा सके, जो धार्मिक कट्टरवाद और आतंकवाद को बढावा दे रहा है. और आख़िरकार, मुस्लिम समाज को एक बार फिर से धार्मिक स्वतंत्रता और इज़राइल मामले पर अपनी सोच का मूल्यांकन करने की चुनौती देने के लिए. ये मक़सद, अमेरिका के राष्ट्रीय हित में भी हैं. इसके ज़रिए वह उस ताक़त को कम करने की कोशिश में हैं जो मध्य एशिया में अमेरिका से नफरत की राजनीति करते हैं. ओबामा की इस पहल के ज़रिए अमेरिका दुनिया भर के मुसलमानों को अमेरिका से नफरत ख़त्म करने की अपील करने के लिए कह रहा है. वह मुसलमानों से उन लोगों को पहचानने की अपील कर रहा है जो लोग अमेरिका के ख़िलाफ़ इस नफरत को फैला कर दुनिया भर में आतंक का जाल बुन रहे हैं. राष्ट्रपति ओबामा ने अपने भाषण में आतंकवाद शब्द का इस्तेमाल नहीं किया, जिससे यह ज़ाहिर है कि वह 11 सितंबर के बाद शुरू हुए उस अमेरिकी बर्ताव से किनारा करना चाहता है जिसे बुश ने मुस्लिम देशों के ख़िलाफ़ शुरू किया था. इससे यह साफ है कि ओबामा प्रशासन महज़ एक कसौटी पर मुस्लिम देशों का आकलन नहीं करेगा, हालांकि ओबामा ने यह भी साफ कर दिया कि वह उन कट्टरपंथियों को मुंहतोड़ जवाब देंगे जो अमेरिका की सुरक्षा को ख़तरे में डालने की कोशिश करेंगे. तुर्की की संसद में दिए अपने भाषण में ओबामा ने साफ कहा कि अमेरिका इस्लाम के साथ युद्ध में न कभी संलिप्त था और न ही कभी रहेगा.

उन्होंने सात महत्वपूर्ण मुद्दों को भी गिनाया, जिन पर अमेरिका और मुस्लिम जगत को एकजुट होकर काम करने की ज़रूरत है. ये मुद्दे हैं, हिंसक कट्टरवाद, अरब-इज़राइल विवाद, ईरान का परमाणु कार्यक्रम, लोकतंत्र, धार्मिक स्वतंत्रता, महिलाओं को अधिकार और आर्थिक अवसर. काहिरा का भाषण वह पहला मौका है जब किसी पश्चिमी देश के नेता ने सार्वजनिक तौर पर न सिर्फ़ यह माना कि अमेरिका और मुस्लिम जगत के रिश्ते अपने सबसे निचले स्तर पर पहुंच चुके हैं, बल्कि यह भी कि इसके पीछे क्या वज़ह है जो दोनों के बीच मतभेद बढ़ते गए. इस बात की पुष्टि पिछले कुछ सालों में किए गए सर्वेक्षण से भी होती है. ओबामा ने इस विवादित विरासत की समीक्षा करते हुए उपनिवेशवाद, शीत युद्ध के दौरान बने झूठे संबंध, इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान में इच्छा और ज़रूरत का युद्ध, वह क़दम जो अमेरिका ने 11 सितंबर के हमलों के बाद उठाए (ग्वांतनामो में कैदियों के साथ सुलूक), फिलिस्तीन और आधुनिकीकरण और भूमंडलीकरण से पैदा हुए तनावों का जिक्र किया. ओबामा ने अपने भाषण में मुसलमानों के गिले-शिकवों के लिए जिस तरह शब्दों का चुनाव किया उससे उन्होंने यह साफ कर दिया कि इतिहास पर उनकी मज़बूत पकड़ है और मुस्लिम मानसिकता को समझने की क़ाबिलियत भी. अफसोस इस बात का है कि उनके भाषण में दक्षिण एशिया और दक्षिण-पश्चिम एशिया के लिए इस तरह की समझ का जिक्र नहीं है.

इतिहास की समीक्षा करते वक़्त ओबामा ने इस बात का जिक्र नहीं किया कि किस तरह अमेरिका और रूस शीत युद्ध के दौरान अफ़ग़ानिस्तान में शुरू हुई समस्या के लिए ज़िम्मेदार हैं. अगर राष्ट्रपति ओबामा ने अफ़ग़ानिस्तान में भी अपनी ग़लती मानी होती, जिसका नतीजा आज का अफ़ग़ानिस्तान भुगत रहा है, तो उससे इतिहास पर से कुछ बोझ कम हुआ होता और पाकिस्तान की जनता को भी संदेश मिलता कि अमेरिका, अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान में ज़िम्मेदारी की भूमिका निभाने के लिए तत्पर है. एक भाषण में सभी मुद्दों को नहीं जोड़े जाने के तर्क की सार्थकता यहां नहीं थी. कैसे और क्यों इस इलाक़े में आतंकवाद पनपा, जिसने इस इलाक़े को अपनी गिरफ़्त में कर लिया, यह सवाल भी बहुत अहम था और आख़िर क्यों इस सवाल को ऐसे भाषण में शामिल नहीं किया गया जो दावा करता है कि वह इतिहास के लिए तर्कसंगत है. ओबामा के इस भाषण का केंद्रबिंदु फिलिस्तीन-इज़राइल विवाद था. वह विवाद जिसने दुनियाभर के मुसलमानों को इतिहास से शिकायत के अहसास में एकजुट कर दिया है और आज वह एक अन्याय का प्रतीक बन चुका है. कई दशकों से अमेरिका की रणनीति में इज़राइल की सुरक्षा सर्वोपरि रही और उसके लिए फिलिस्तीनियों के साथ हो रहे अन्याय और अंतरराष्ट्रीय क़ानून को नज़रअंदाज किया जाता रहा. इसी वजह से दुनिया भर के मुसलमान अमेरिका से नफरत करने लगे. यही वजह है कि राष्ट्रपति ओबामा ने पुरानी नीतियों को दरकिनार करते हुए साफ संकेत दिए कि वह इस विवाद को निष्पक्षता के साथ हल करने की कोशिश करेंगे.

हालांकि, ओबामा ने मध्य एशिया में शांति के लिए कोई विस्तृत योजना नहीं दी. उन्होंने महज़ उन दायरों का जिक्र किया जिसमें इस विवाद को सुलझाने की कवायद की जाएगी. ओबामा ने अपनी ख़ास शैली और भाषा में जिस तरह से फिलिस्तीनी लोगों के साथ हमदर्दी जताई, वह अभी तक किसी भी अमेरिकी राष्ट्रपति ने नहीं किया. जहां एक तरफ़ ओबामा ने यह कहा कि इज़राइल से अमेरिका का संबंध कभी तोड़ा नहीं जा सकता. वहीं, पहली बार किसी अमेरिकी राष्ट्रपति ने फिलिस्तीनियों के साथ इज़राइली ज्यादती की आलोचना की. बराक ओबामा के ऐसे बयान भले ही इज़राइल और अमेरिका के संबंधों को प्रभावित करें या न करें, यह ज़रूर तय है कि पहली बार अमेरिका ने इस विवाद में एक तटस्थ मध्यस्थ की भूमिका अदा करने की कोशिश की है. इस विवाद के हल के लिए दो राज्यों के मत को मान कर ओबामा ने एक लंबी कूटनीतिक प्रक्रिया शुरू करने के लिए ज़मीन तैयार कर दी है. बराक ओबामा के बदलाव लाने के दावों की जांच इसी बात से होनी है कि क्या वह इज़राइल पर दो-राष्ट्र के उस समझौते को मानने के लिए दबाव डाल सकते हैं, जिसे 2002 में सऊदी अरब ने अरब पीस इनीशिएटिव के तौर पर पारित किया था. आने वाले दिनों में बराक ओबामा को इज़राइल के कट्टरपंथी नेताओं के दबाव का सामना करना पड़ेगा और वह भी उस समय जब इज़राइल में कराए जा रहे जनमत सर्वेक्षण इस बात का संकेत दे रहे हैं कि फिलिस्तीन की क़ब्ज़ा की गई ज़मीन को अब इज़राइल से जुड़ा मान लेना चाहिए.

इस भाषण में अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान को सरसरी तौर पर छुआ गया. वह बात अलग है कि भाषण महज़ अरब देशों को ही संबोधित था. अन्यथा, जिस सतही तौर पर अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान का जिक्र किया गया, उससे इतना साफ है कि अमेरिका की अफ़ -पाक नीति में रणनीतिक ख़ामियां हैं.

बहरहाल, राष्ट्रपति ओबामा ने अफ़ग़ानिस्तान पर 2001 की सैनिक कार्रवाई को ज़रूरी बताया, और वहां अमेरिकी फौज की मौजूदगी को अमेरिकियों पर हमले से बचाव करने के लिए आवश्यक भी कहा. जब तक अमेरिका अपनी सुरक्षा को लेकर आश्वस्त नहीं हो जाता, वह अफ़ग़ानिस्तान से सेना हटाने की बात पर ग़ौर नहीं करेगा. हालांकि ओबामा ने यह साफ किया कि वह अफ़ग़ानिस्तान में किसी हालत में स्थायी तौर पर अमेरिकी सेना लगाने की बात से कोई इत्तफाक नहीं रखते. ज़ाहिर है कि ओबामा के इस बयान का पाकिस्तान और अन्य देशों में स्वागत किया जाएगा.

बराक ओबामा ने एक बार फिर अपनी बात को दोहराया कि महज़ सैनिक शक्ति से पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान की समस्या का हल नहीं खोजा जा सकता है. लेकिन उनकी ये बातें अमेरिका की मौजूदा नीति के विपरीत हैं, जहां वह फ़िलहाल सैनिक क्षमता पर ही ज़ोर दे रहे हैं. अफ़ग़ानिस्तान में अमेरिकी सेना लगातार बढ़ाई जा रही है और पाकिस्तान में द्रोन मिसाइलों से लगातार हमले किए जा रहे हैं. बराक ओबामा की वह अपील, जिसमें वह दुनिया की एक नई तस्वीर देखने को कह रहे हैं कि अमेरिका और मुस्लिम देश एकजुट होकर साझा हितों को ध्यान में रखते हुए साझा चुनौतियों का मुकाबला करें, ग़ौर करने लायक है. ओबामा की इस अपील में कई वादे हैं. अब यह भाषण किस हद तक अमेरिका और मुस्लिम देशों के संबंधों को सुधारने में कामयाब रहेगा, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि अब अमेरिका मध्य एशिया के लिए क्या नीतियां लेकर आता है. यह इस बात पर भी निर्भर करेगा कि किस तरह मुसलमान नेता इस राजनीतिक और बौद्धिक चुनौती का सामना करते हैं और अमेरिका से कैसे संवाद कर मध्य एशिया के लिए एक निर्णायक नीति तैयार करते हैं.

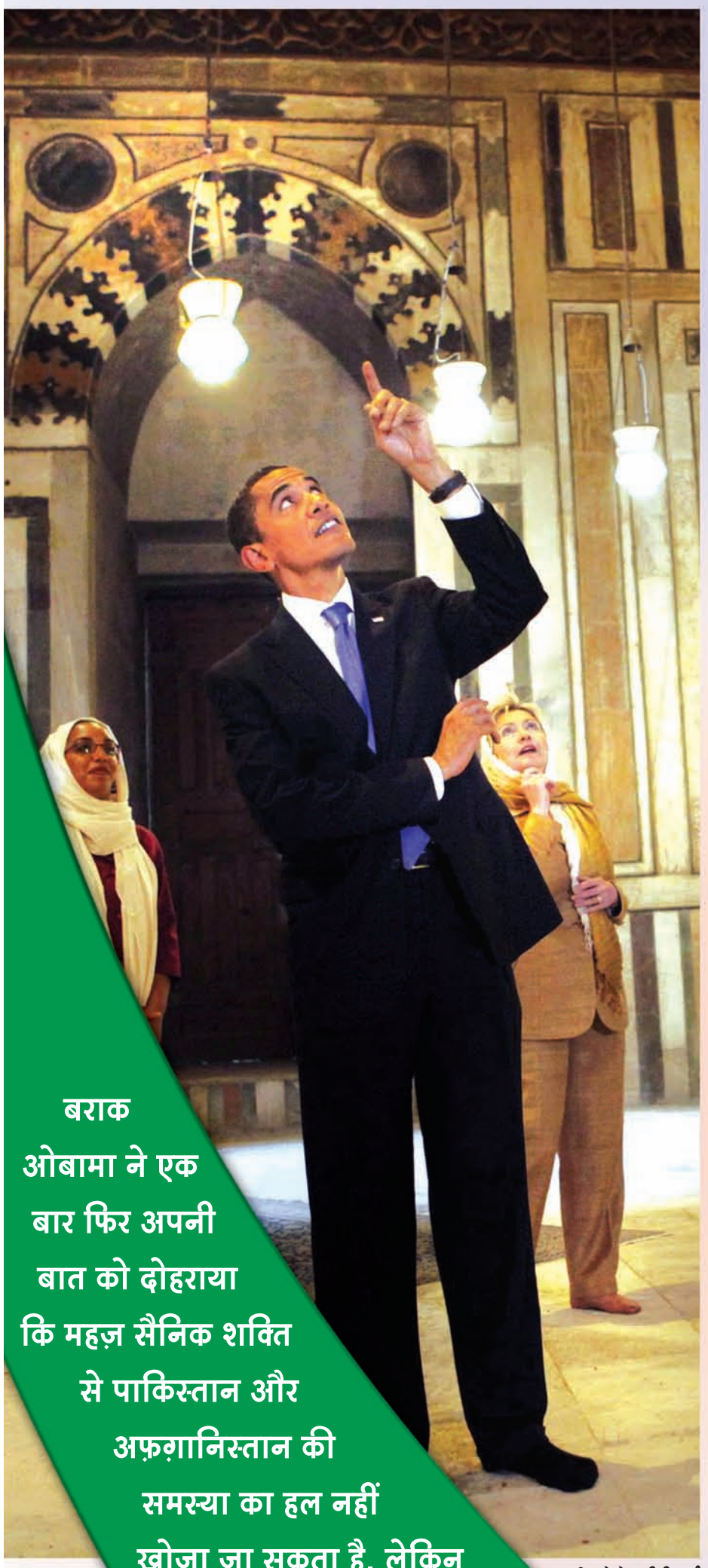

पाकिस्तान से एम. लोधी
feedback.chauthiduniya@gmail.com

सभी फोटो-*पीटीआई*

बराक ओबामा ने एक बार फिर अपनी बात को दोहराया कि महज़ सैनिक शक्ति से पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान की समस्या का हल नहीं खोजा जा सकता है. लेकिन उनकी ये बातें अमेरिका की मौजूदा नीति के विपरीत हैं, जहां वह फ़िलहाल सैनिक क्षमता पर ही ज़ोर दे रहे हैं. अफ़ग़ानिस्तान में लगातार अमेरिकी सेना बढ़ाई जा रही है और पाकिस्तान में द्रोन मिसाइलों से लगातार हमले किए जा रहे हैं.

काफी ख़तरनाक होता था केजीबी के काम का तरीक़ा

केजीबी के काम करने का तरीक़ा और उसका मुख्यालय इतने रहस्यमय थे कि ख़ुफ़िया दुनिया में उसके बारे में किसी को कोई पुख्ता जानकारी नहीं थी, यहां तक की केजीबी के सबसे बड़े एजेंटों को भी नहीं. केजीबी के रहस्यमयी अंदाज़ का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि केजीबी के सबसे बड़े एजेंट माने जाने वाले *कैंब्रिज़ फाइव* के किम फिलबी को भी उस मुख्यालय के बारे में जानकारी नहीं थी और महज़ एक ब्रिटिश होने की वजह से उन्हें कभी उस मुख्यालय में जाने की इजाज़त नहीं दी गई.

पावस नीर

मार्च 1945, लंबा ओवरकोट और हैट पहने एक व्यक्ति अपना ब्रीफकेस लिए ब्रिटेन के एक पार्क में आराम कर रहा था. एक युवा जोड़ा हंसते-मुस्कुराते वहां आता है. वह व्यक्ति उस जोड़े के लिए जगह छोड़ कर उठ जाता है. आने-जाने वालों को भले यह उस व्यक्ति का शिष्टाचार लगे, लेकिन शायद ही किसी ने इस बात पर ध्यान दिया कि उसका ब्रीफकेस वहीं रह गया. किसी ने इस पर भी ध्यान नहीं दिया कि थोड़ी देर में वह प्रेमी जोड़ा ब्रीफकेस लिए उसी तरह हंसते हुए निकल गया. किसी को नहीं समझ आया होगा कि यह मामूली घटना दुनिया के इतिहास पर बहुत बड़ा असर डालने जा रही थी. दरअसल उस ब्रीफकेस में ब्रिटिश और अमेरिकी परमाणु कार्यक्रम की ख़ुफ़िया जानकारियां थीं. ओवरकोट वाला वह आदमी और हंसता-खिलखिलाता वह प्रेमी जोड़ा एक ख़तरनाक ख़ुफ़िया ऑपरेशन का हिस्सा थे और इस पूरी कवायद के पीछे था दुनिया का सबसे ख़तरनाक ख़ुफ़िया संगठन-केजीबी.

केजीबी यानी कोमितयेत गोसुदारस्त्वजेनोज बिजोपासनोस्ती. सोवियत संघ की ख़ुफ़िया एजेंसी केजीबी के बनने और फिर उसके अंत तक की कहानी से हम आपको वाक़िफ़ करा चुके हैं. इसमें कोई शक़ नहीं कि ख़ुफ़िया सूचना और जासूसी के क्षेत्र में केजीबी का तोड़ नहीं था. लेकिन आख़िर केजीबी कैसे बनी दुनिया की सबसे ख़तरनाक एजेंसी? क्या था केजीबी के काम करने का तरीक़ा? ख़ुफ़िया एजेंसियों को नज़दीक से जानने वाले अधिकतर विशेषज्ञ मानते हैं कि केजीबी दुनिया की प्रभावी ख़ुफ़िया एजेंसी रही. अपने काम करने के तरीक़े से केजीबी दुनिया की सभी बड़ी और प्रतियोगी ख़ुफ़िया एजेंसियों से एक क़दम आगे रही. केजीबी का काम करने का अनुशासित और ज़ोरदार तरीक़ा ही उसके सबसे प्रभावी होने का कारण रहा. किसी भी दूसरी एजेंसी की तरह केजीबी का काम भी दो तरह के ख़ुफ़िया एजेंटों के बीच बंटा हुआ था. इन एजेंटों को वैधानिक और अवैध में बांटा जाता था.

वैधानिक एजेंट

ये एजेंट सोवियत दूतावासों और उच्चायोगों की आड़ में काम करते थे. उच्चायोग और दूतावास में अधिकारियों के तौर पर ये एजेंट कूटनीतिक संरक्षण के साथ काम करते थे. इनका काम कूटनीतिक पार्टियों और बैठकों में दूसरे देशों की जानकारियों निकालना और उन्हें कूटनीतिक रास्तों और संदेशों के माध्यम से सोवियत संघ पहुंचाना होता था. अगर ये एजेंट पकड़े भी जाते तो उन्हें कूटनीतिक संरक्षण की वजह से कोई नुकसान नहीं पहुंच सकता था. ज़्यादा से ज़्यादा उन्हें वापस सोवियत संघ आना पड़ता था. केजीबी के ऐसे एजेंट चार तरह के विभागों में बांटे गए थे. पहला पीआर लाइन जिसके ज़िम्मे राजनीतिक, आर्थिक व सैन्य सूचनाएं इकट्ठा करना और ग़लत सूचनाएं देने का काम होता था. दूसरा अन्य देशों के एजेंटों और अपने भेदियों के ख़िलाफ़ सुरक्षा का काम करता था जिसे कूट भाषा में केआर लाइन कहा जाता था, तीसरा वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी जुटाने वाली एक्स लाइन और चौथा अवैध एजेंटों की मदद करने वाले एजेंट यानी एन लाइन.

अवैध एजेंट

ये ऐसे एजेंट थे जिन्हें हम अक्सर फिल्मों और उपन्यासों में पाते हैं. भेष बदलकर, अपनी पहचान छुपाकर और दूसरे ख़ुफ़िया तरीक़ों से काम करने वाले ये एजेंट किसी भी एजेंसी की रीढ़ होते हैं. केजीबी के पास भी ऐसे एजेंटों का एक विशाल नेटवर्क था. केजीबी के पास वैधानिक एजेंटों से काफी अधिक अवैध एजेंट थे, इस ज़रिए काम करना केजीबी का ख़ास तरीक़ा था. हालांकि केजीबी की विरोधी एजेंसियों के पास भी ऐसे एजेंट थे, लेकिन केजीबी का यह नेटवर्क उस दौरान सबसे विस्तृत और प्रभावी था. अवैध एजेंटों को आम ख़ुफ़िया एजेंट और नियंत्रक की भूमिकाओं में बांटा जाता था. पहले का काम जानकारी जुटाना और दूसरे का उसे क्रेमलिन के केजीबी मुख्यालय तक पहुंचाना होता था. बड़े एजेंटों के कई नियंत्रक हुआ करते थे. ऐसे एजेंट दो तरह के होते थे, जो सोवियत नागरिक थे और जिन्हें दूसरे देशों से जोड़ा जाता था. केजीबी ने सोवियत नागरिकों को एजेंट के तौर पर दूसरे देशों में भेजने के लिए उनकी एक दोहरी पहचान बनाई, या उन्हें किसी मृत व्यक्ति की पहचान दी गई. कई बार तो जासूस दोहरे एजेंट के तौर काम करते थे, यानी दूसरे देश के एजेंट केजीबी को सूचनाएं पहुंचाते थे. केजीबी का सबसे ख़तनाक तरीक़ा तीहरे एजेंट का था जिसमें कोई सोवियत जासूस किसी विदेशी एजेंसी में जाकर केजीबी के ख़िलाफ़ जासूसी करता था लेकिन असल में वह केजीबी तक ही उस देश की ख़ुफ़िया सूचनाएं पहुंचा रहा होता था. यही तकनीक बाद में अमेरिकी सीआईए ने भी अपनाई लेकिन इसकी शुरुआत केजीबी ने ही की. सबसे रोचक बात यह है कि एजेंटों की असल संख्या का अंदाज़ा और उनके पते की जानकारी किसी भी एक आदमी के पास नहीं होती थी.

केजीबी के काम करने का तरीक़ा और उसका मुख्यालय इतने रहस्यमय थे कि ख़ुफ़िया दुनिया में उसके बारे में किसी को कोई पुख्ता जानकारी नहीं थी, यहां तक की केजीबी के सबसे बड़े एजेंटों को भी नहीं. केजीबी के रहस्यमयी अंदाज़ का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि केजीबी के सबसे बड़े एजेंट माने जाने वाले कैंब्रिज़ फाइव के किम फिलबी को भी उस मुख्यालय के बारे में जानकारी नहीं थी और महज़ एक ब्रिटिश होने की वजह से उन्हें कभी उस मुख्यालय में जाने की इजाज़त नहीं दी गई. दूसरे विश्व युद्ध के बाद कम्युनिज़्म और पूंजीवाद के ख़िलाफ़ लड़ने की केजीबी की विचारधारा से प्रभावित होकर कई युवा लोग इससे जुड़े. हालांकि बाद में ग़ैर-पूंजीवादी से अधिक इसकी विचारधारा ग़ैर-अमेरिकी हो गई. शीतयुद्ध के समय अमेरिका के ख़िलाफ़ जासूसी में केजीबी ने सभी हथकंडे अपनाए. केजीबी के पूछताछ का तरीक़ा दुनिया में सबसे ख़तरनाक था. साथ ही सोवियत प्रभाव बढ़ाने के लिए केजीबी ने उसके राजनीतिक और सैन्य दुश्मनों का बेरहमी से कत्ल कराया. केजीबी का नाम आतंक और भय का पर्याय बनता गया. कई देशों की सरकार केजीबी के दबाव में काम करती रही क्योंकि उन्हें अपनी हत्या का डर लगा रहा. एजेंटों को भी अपने साथ जोड़ने के लिए विचारधारा से अधिक धन और धमकी का इस्तेमाल किया जाने लगा.

pavas.chauthiduniya@gmail.com

ज़रा हट के

दो अमेरिकी पत्रकारों को सज़ा

उत्तर कोरिया में दो अमेरिकी पत्रकारों को बारह साल के क़ैद की सज़ा दी गई है. सबसे अजीब बात है कि इन पत्रकारों पर कौन से आरोप हैं, इसका कोई ब्यौरा नहीं दिया गया. उत्तर कोरिया के सर्वोच्च न्यायालय ने दोनों अमेरिकी पत्रकारों लौरा लिंग और यूना ली को उत्तर कोरिया के ख़िलाफ़ एक गंभीर आरोप का दोषी करार देते हुए 12 साल के सश्रम कारावास की सज़ा दी है.

ये पत्रकार अमेरिका के पूर्व उप-राष्ट्रपति अल गोर के करेंट टीवी से जुड़े हुए हैं. उत्तर कोरियाई सरकार के बयान के मुताबिक ये पत्रकार अवैध तरीक़े से देश में घुसने के दोषी हैं. इनकी गिरफ़्तारी और सज़ा को उत्तर कोरिया और अमेरिका के तनावपूर्ण संबंधों का नतीजा माना जा रहा है. उत्तर कोरियाई राजनीति को समझने वाले विशेषज्ञों का कहना है कि उत्तर कोरिया इन पत्रकारों को अमेरिका और संयुक्त राष्ट्र से सौदेबाज़ी के लिए इस्तेमाल कर सकता है. ग़ौरतलब है कि हाल में उसके परमाणु और मिसाइल परीक्षणों के बाद संयुक्त राष्ट्र ने उत्तर कोरिया पर प्रतिबंध और कड़े कर दिए हैं. इतना ही नहीं, नए प्रतिबंधों पर भी विचार चल रहा है. दरअसल इन पत्रकारों को उसी दिन सज़ा सुनाई गई जब संयुक्त राष्ट्र में इन प्रतिबंधों पर विचार चल रहा था.

मलबों से हटा विमान दुर्घटना का रहस्य

रहस्यमय तरीक़े से दुर्घटनाग्रस्त हो गए एयर फ्रांस के मलबे के मिल जाने के बाद यह उम्मीद जताई जा रही है कि इस दुर्घटना के असली कारणों का पता चल जाएगा. ग़ौरतलब है कि 31 मई को एयर फ्रांस का यह विमान एयरबस ए330 फ्लाइट 447 अपने साथ 200 से अधिक यात्रियों को लेकर दुर्घटना का शिकार हो गया था. लगभग एक हफ़्ते तक विमान का अता-पता न लग पाने पर दुर्घटना के कारणों पर अटकलें लगनी शुरू हो गई थीं. विमान के दुर्घटनाग्रस्त होने के पीछे तकनीकी गड़बड़ी से लेकर आतंकी हमले तक के कयास लगाए जा रहे थे. हालांकि विमान का ब्लैक बॉक्स (जिसमें पायलट और उसके सहयोगियों की

बातचीत रिकार्ड होती है) का पता अब तक नहीं चला है. कहा जा रहा था कि विमान के मलबे को पहले ही ढूंढ लिया गया था लेकिन उस वक़्त इसे किसी जहाज का छोड़ा गया कचरा समझ लिया गया था.

सऊदी अरब में फिर दिखी फिल्म

रियाद में बीते दिनों कुछ लोगों ने एक फिल्म देखी. अब फिल्म देखना भले ही भारत या पश्चिमी देशों के लिए मामूली-सी बात हो, लेकिन रियाद में इन लोगों का फिल्म देखना किसी ऐतिहासिक घटना से कम नहीं था. दरअसल रियाद में हुआ फिल्म का प्रदर्शन पिछले तीस सालों में देश का पहला फिल्म शो था. धार्मिक कट्टरता के दौर में तीस साल पहले सभी सिनेमाघरों को बंद कर दिया गया था. इस फिल्म का प्रसारण सऊदी अरब में बढ़ते उदारवाद का एक और नमूना है. रियाद के अमीर शाह अब्दुल्ला के भतीजे और दुनिया के 11वें सबसे अमीर व्यक्ति अल्वादीद बिन तलाल की कंपनी द्वारा बनाई गई फिल्म मनाही का प्रदर्शन किया गया. हालांकि कई लोगों ने सिनेमाघर के बाहर खड़े होकर फिल्म के प्रदर्शन का विरोध किया और लोगों को उसे देखने से रोका भी. फिल्म के दौरान भी एक आदमी ने नारेबाज़ी कर फिल्म का विरोध किया, लेकिन उसे सुरक्षाकर्मियों ने बाहर कर दिया. सऊदी अरब में पिछले कुछ समय में फिल्मों को लेकर रवैया उदार हुआ है. पिछले साल सऊदी अरब के पहले फिल्म फेस्टिवल तक का आयोजन किया गया था. जिसमें सरकार की ओर से सूचना मंत्री शामिल हुए थे. हालांकि अभी और सुधार की ज़रूरत है, क्योंकि इस फिल्म के प्रदर्शन से रियाद की आधी आबादी यानी महिलाओं को दूर रखा गया.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मंदी को भी मार गिराया रक्षा उद्योग ने

पूरा विश्व भले ही आर्थिक मंदी के दौर से गुज़र रहा हो, लेकिन हथियारों के बाज़ार पर इसका कोई असर नहीं हुआ है. जहां सभी उद्योग मंदी की मार झेल रहे हैं, वहां हथियार और लड़ाकू विमान बनाने वाली कंपनियों की सेहत पर कोई प्रभाव नहीं दिखा. विश्व भर में सैन्य और रक्षा ज़रूरतों पर हो रहा ख़र्च इस साल चार प्रतिशत और बढ़ गया है. यह आंकड़ा अब 1464 बिलियन डॉलर तक पहुंच गया है. आज से दस साल पहले यानी 1999 के आंकड़ों से यह 45 प्रतिशत ज़्यादा है. ये आंकड़े स्वीडन में स्थित संस्था सिपरी की शोध में सामने आए हैं. साथ ही शांति के लिए चल रहे अभियानों में ग्यारह फीसदी की बढ़ोतरी हुई. दारफुर और कांगो में शांति सेनाएं भेजी गईं. इस बार शांति सैनिकों की संख्या ने भी रिकार्ड क़ायम किया. इस साल यह संख्या 187,586 पहुंच गई. उधर, जहां अधिकतर नागरिक विमान कंपनियों के लिए यह साल घाटे का रहा, वहीं लड़ाकू विमान बनाने वाली कंपनियां फ़ायदे में रहीं. रक्षा और सैन्य ख़र्चों के मामले में मंदी से सबसे ज़्यादा पीड़ित अमेरिका ही अव्वल है. अमेरिका ने क़रीब 600 बिलियन इस बार इन मामलों में ख़र्च कर दिए. उसके बाद चीन और फ्रांस का नंबर रहा. वैसे इस मामले में भारत भी पीछे नहीं है. उसका नाम भी रक्षा पर सबसे ज़्यादा ख़र्च करने वालों में दसवें नंबर रहा. सिपरी के मुताबिक भारत ने क़रीब 30 बिलियन डॉलर यानी 15 अरब रुपए रक्षा मामलों पर ख़र्च किए.

रंगमंच के हबीब थे तनवीर

स्मृति शेष

जन्म 01-09-1923
निधन- 08-06-2009

सुप्रसिद्ध रंगकर्मी हबीब तनवीर का लंबी बीमारी के बाद भोपाल में निधन हो गया. कुछ दिनों पहले उन्हें सांस लेने में तक़लीफ़ की शिकायत के बाद निजी अस्पताल में दाख़िल कराया गया था, जहां वह वेंटिलेटर पर थे. अस्पताल के डॉक्टरों के मुताबिक तनवीर जी को अस्थमा का दौरा पड़ा था, जिसके चलते उन्हें सांस लेने में तक़लीफ़ हो रही थी. उनके फेफड़ों में पानी भर गया था और सीने व ख़ून में संक्रमण की वजह से तबीयत बिगड़ गई थी.

किसी भी विधा में यह देखने को कम ही मिलता है कि अपने जीवन काल में ही उसमें काम करने वाला लीजेंड बन जाता हो. लेकिन हबीब तनवीर के साथ यही हुआ और वह रंगमकर्म की दुनिया के *लीविंग लीजेंड* बन गए थे. बावजूद इसके, हबीब तनवीर का लोगों से जुड़ाव कम नहीं हुआ और वह लोक के कलाकार के तौर पर मशहूर हुए. हबीब जी ने जब रंगकर्म की दुनिया में क़दम रखा तो उस वक़्त रंगमंच की दुनिया में लोक की बात कम होती थी. लेकिन *इप्टा* और *प्रगतिशील लेखक संघ* के साथ जुड़ाव ने उन्हें लोक से जुड़ने के लिए न केवल प्रेरित किया, बल्कि उनके विचारों को भी गहरे तक प्रभावित किया. एक सितंबर 1923 को रायपुर में जन्मे हबीब तनवीर को पद्म भूषण, पद्म श्री और संगीत नाटक अकादमी जैसे पुरस्कार मिले थे. उनके पिता हफीज अहमद ख़ान पेशावर (पाकिस्तान) के रहने वाले थे. स्कूली शिक्षा रायपुर में पूरी करने के बाद वह अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय पहुंचे, जहां से उन्होंने ग्रेजुएशन किया और फिर 1945 में वह मुंबई चले गए. वहां बतौर प्रोड्यूसर वह ऑल इंडिया रेडियो से भी जुड़े. कई कविताएं लिखीं, तो फिल्मों में अभिनय भी किया. वहां उनका जुड़ाव इप्टा और प्रगतिशील लेखक संघ से हुआ. लेकिन हबीब साहब ने नाटक की दुनिया में क़दम दिल्ली आने के बाद ही रखा. जहां 1954 में उन्होंने पहली बार *आगरा बाज़ार* का मंचन किया. वह इस नाटक के लेखक भी थे. दिल्ली में यह वह दौर था जब रंगमंच की दुनिया यूरोपियन मॉडल से प्रभावित थी और यहां अंग्रेजी वालों का बोलबाला था. लेकिन अपने इस नाटक से तनवीर साहब ने न केवल अंग्रेजी का आधिपत्य तोड़ा, बल्कि रंगमंच की दुनिया के लिए एक नया आकाश भी उद्घाटित किया.

यह नाटक अठारहवीं शताब्दी के मशहूर उर्दू शायर अकबर नजीराबादी पर केंद्रित था. इस नाटक में हबीब तनवीर ने ओखला गांव के कलाकारों को लेकर रंगमंच के आभिजात्य को चुनौती देते हुए एक नई भाषा भी गढ़ी. इसके बाद हबीब इंग्लैंड चले गए, जहां तीन साल तक रॉयल अकादमी ऑफ ड्रामेटिक आर्ट्स में रंगमंच और उसकी बारीकियों को समझा. फिर 1959 में तनबीर ने अपनी रंगकर्मी पत्नी मोनिका मिश्रा के साथ मिलकर *नया थिएटर* नाम से एक ग्रुप बनाया, जिसने भारतीय और यूरोपियन क्लासिक का मंचन किया. रंगमंच की दुनिया को तनवीर साहब ने अंग्रेजी आभिजात्य से तो आज़ादी दिलाई ही, साथ ही उन्होंने लोक कलाकारों को स्थानीय बोली में नाटक करने के लिए प्रोत्साहित भी किया.

1975 में हबीब तनवीर ने अपना मशहूर नाटक *चरणदास चोर* का मंचन किया जो आजतक इतना लोकप्रिय है कि जहां भी, जब भी इसका मंचन होता है, लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती है. इसके बाद तनवीर ने कई विश्व क्लासिक का मंचन किया, जिसमें गोर्की की *एनेमीज* पर आधारित *दुश्मन*, असगर वजाहत की *जिन लाहौर नहीं बेख्या* के अलावा *कामदेव का अपना, बसंत ऋतु का सपना, शाजापुर की शांतिबाई* आदि ने रंगमंच को एक नई उंचाई दी. हबीब तनवीर ने थिएटर के साथ बॉलीवुड की फिल्मों में भी अपने अभिनय की छाप छोड़ी. उन्होंने नाना पाटेकर अभिनीत चर्चित फिल्म *प्रहार* और निर्देशक सुभाष घई की *ब्लैक एंड व्हाइट* में भी काम किया.

हबीब तनवीर के प्रगतिशील विचारों को जब नाटकों में जगह मिलने लगी तो भगवा ब्रिगेड के कान खड़े हुए और जब मध्य प्रदेश में 2003 में *पोंगा पंडित* और *लाहौर* का मंचन शुरू हुआ तो भगवा ब्रिगेड के कार्यकर्ताओं ने जमकर विरोध प्रदर्शन कर इन दोनों नाटकों के मंचन को रुकवाने की कोशिश की. लेकिन हबीब की जिजीविषा पर कोई असर नहीं हुआ और अपने नाटकों के माध्यम से वह अलख जगाते रहे, बग़ैर डरे, बग़ैर घबराए.

हबीब तनवीर का योगदान देखें तो सबसे पहले तो यही कि उन्होंने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और इब्राहीम अलकाज़ी की अगुआई में सत्तर के दशक में भारतीय रंगमंच पर हावी हो रहे विदेशी संस्कार और अंग्रेजी के सामने खड़े होने का साहस दिखाया. जो नाट्यलेखन एक निश्चित मध्यवर्ग और बंद रंगशालाओं के लिए हो रहा था, उसे लोक का व्यापक संदर्भ दिया. अपने *नया थिएटर* के ज़रिए उन्होंने इस धारणा की पुष्टि की कि किसी भी कला की तरह रंगमंच को भी पहले स्थानीय होना होगा, तभी वह राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय हो सकता है. उन्होंने इस अवधारणा को सिद्धांत से उठाकर हक़ीक़त में तब्दील भी कर दिखाया. प्रोसिनियम थिएटर के समानांतर उन्होंने लोक नाट्य का क़द इतना बड़ा कर दिया कि वह आज के वैश्विक युग में भी सीना तानकर खड़ा है. प्रसिद्ध कथाकार और कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल कहते हैं, जैसा कि सब जानते हैं कि थियेटर का रिश्ता कला के सभी माध्यमों के साथ है. पर थियेटर के भी सभी लोग इस बात को निभा नहीं पाते. हबीब साहब ने सहज रूप से न केवल इसको समझा, बल्कि निभाया भी.

यह हैरान करता है कि थियेटर की पढ़ाई लंदन की रॉयल अकादमी ऑफ़ ड्रामेटिक आर्ट्स से करने के बावजूद वह पाश्चात्य शैली और तड़क-भड़क के मोहपाश में कभी नहीं फंसे. वह व्यक्तिगत जीवन में भी तड़क-भड़क से कोसों दूर रहे. उन्होंने हमेशा मिट्टी से नाटक उठाए. सच कहें तो पिछले पचास साल से नया थियेटर का विकास दरअसल हिंदुस्तान में तनवीरी परंपरा का विकास का ही रहा है. उन्होंने अपने लिए अभिव्यक्ति के तौर पर लोक परंपराओं के साथ सदियों से चली आ रही संवाद शैलियों को चुना. शास्त्र और लोक के रिश्ते में उनकी अगाध आस्था थी.

शुरुआती दौर में इप्टा से जुड़ने के कारण वामपंथ का उन पर पूरा असर था, जो अंत तक बना रहा. इसलिए उनके नाटकों में यथार्थ हमेशा अधिक मुखर रहा. सार्थक और ईमानदार रंगमंच से उनका नाता अंत तक बना रहा. इतना कि कई बार उन्हें आलोचना के अलावा हमले तक झेलने पड़े. बावजूद इसके, अपनी विचारधारा से समझौता उन्होंने कभी नहीं किया. वामपंथियों के साथ जब इंदिरा गांधी के रिश्ते अच्छे थे, तब उनकी प्रशंसा में उन्होंने *इंद्रसभा* जैसा नाटक भी किया. तब इंदिरा गांधी के प्रयासों से भारत ने बांग्लादेश को आज़ाद कराया था.

हबीब साहब ने फ़िल्मों और टीवी धारावाहिकों में भी काम किया. वह भोपाल गैस त्रासदी पर बन रही एक फ़िल्म में काम कर रहे थे. रांगेय राघव के उपन्यास पर बने सीरियल-कब तक पुकारूं-में उन्होंने बेजोड़ अभिनय किया था. सत्तर के दशक में वह राज्यसभा के सदस्य रहे. राज्यसभा के सदस्य बनने वाले वह दूसरे रंगकर्मी थे. उनसे पहले यह सम्मान पृथ्वी राज कपूर को मिला था. कहते हैं कि इन दिनों वह अपनी जीवनी पर काम कर रहे थे. बताया तो यहां तक जा रहा है कि यह किताब लगभग पूरी हो गई है. अब देखना यह है कि उनकी एकमात्र वारिस बेटी नगीन पिता के उस नगीने को पाठकों तक कब पहुंचाती हैं.

रंगमंच की इस महान विभूति को *चौथी दुनिया* की ओर से श्रद्धांजलि.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

राशिफल

(15 जून से 21 जून तक)

मेष (21 मार्च से 20 अप्रैल)
इस सप्ताह आपको विपरीत परिस्थितियों और दबाव का सामना करना पड़ सकता है. वैसे इस स्थिति से निपटने में आप स्वयं कामयाब रहेंगे. कार्यस्थल पर भी आप अपनी बातों से लोगों का दिल जीत सकेंगे. जहां तक व्यवसाय की बात है, तो इस क्षेत्र में अच्छे परिणाम आ सकते हैं.

वृष (21 अप्रैल से 20 मई)
इस सप्ताह आपको बहुत कुछ करना है. इस चुनौती को आप पूरे उत्साह से स्वीकार करेंगे और अपनी क्षमता को साबित भी करेंगे. इन सबसे महत्व बढ़ेगा. पुरस्कार के रूप में मेहनत का फल भी मिल सकता है. व्यावसायिक क्षेत्र में लाभ की संभावना बन रही है.

मिथुन (21 मई से 20 जून)
इस सप्ताह आप समस्याओं से घिरे रहेंगे. इसलिए किसी एक समस्या पर ध्यान केंद्रित करें. आप प्राथमिकता के आधार पर एक-एक कर सभी का समाधान कर लेने में सफल रहेंगे. अच्छे परिणाम के लिए आप सभी साधन का उपयोग करेंगे. लाभ के लिए लगन से काम करते रहें.

कर्क (21 जून से 20 जुलाई)
इस सप्ताह आप पर काम का दबाव अधिक रहेगा. लेकिन कुछ ऐसा होगा, जिससे आप लंबे समय से अटके कामों को पूरा करने में सफल होंगे. बावजूद इसके, आप ने अब तक जो कुछ किया है उसमें भी बदलाव लाएंगे. जो कुछ भी करें, उसे मन में ही रखें.

सिंह (21 जुलाई से 20 अगस्त)
एक बार फिर आपको अहसास होगा कि आप हालात में बदलाव नहीं ला सकते हैं. इसलिए वास्तविक चीज़ों पर ध्यान केंद्रित करें. आपकी जो भी आकांक्षा है, उसकी पूर्ति पूर्ण रूप से आपकी योग्यता और योजना पर निर्भर करेगी. व्यवसाय में नई संभावना बन रही है.

कन्या (21 अगस्त से 20 सितंबर)
इस सप्ताह आपको एक से अधिक सफलता मिलेगी. क्योंकि आपने समझ लिया है कि नई सोच और ज्ञान के बूते ही किसी चीज़ को प्राप्त किया जा सकता है. ख़ासकर वहां, जहां आप काम कर रहे हैं. परिणामस्वरूप आपको अप्रत्याशित रूप से लाभ होंगे.

तुला (21 सितंबर से 20 अक्टूबर)
आपको इस सप्ताह सतर्क रहना होगा, ताकि अपने नए लक्ष्य के लिए आवश्यक ऊर्जा और विचार बचा सकें. याद रखें कि आपका लक्ष्य काफी बड़ा है. छुट्टियों को अपने काम में बाधा न बनने दें. अपनी मदद में आप किसी अनजानी ताक़त का भी अनुभव कर सकते हैं.

वृश्चिक (21 अक्तूबर से 20 नवंबर)
इस वक़्त आप कुछ नया करने की सोच रहे हैं. इस सप्ताह आपके कार्यक्रम में आत्म सुधार और मौज़मस्ती सबसे ऊपर है. व्यक्तिगत और व्यावसायिक क्षेत्र में संतुलन बनाने में इससे मदद ही मिलेगी. जो काम आपने पहले किया था, वह अब अधिक महत्वपूर्ण साबित होगा.

धनु (21 नवंबर से 20 दिसंबर)
नई सोच और नए विचार आपको लक्ष्य हासिल करने में सहायक सिद्ध होंगे. जो करना चाहते हैं, उसकी सूची बना लें और उस हिसाब से ही लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ें. सफलता अवश्य मिलेगी. व्यावसायिक क्षेत्र में जो निवेश किया था, वह अब फलदायक हो सकता है.

मकर (21 दिसंबर से 20 जनवरी)
इस सप्ताह आप नए अवसर के बारे में सोचेंगे. आप आशान्वित हैं और नए तरीक़े से अच्छा काम भी करेंगे. इसके लिए अधिक उदार होने की ज़रूरत है. इस राशि के जातकों के लिए यह सप्ताह अच्छा रहेगा. क्योंकि सफलता मिलने की संभावना उनके लिए काफी है.

कुंभ (21 जनवरी से 20 फरवरी)
इस सप्ताह कई चीज़ें होंगी, जो आकर्षक के साथ-साथ रोमांचक भी होंगी. इन सबके कारण आपकी सोच में बार-बार बदलाव आएगा, लेकिन इससे जो प्राप्त होगा उससे आपको संतुष्टि भी मिलेगी. यात्रा संबंधी गतिविधियां पहले से अधिक फलदायक होंगी.

मीन (21 फरवरी से 20 मार्च)
इस सप्ताह भाग्य आप पर बेहद मेहरबान है. उम्मीद से कहीं अधिक सफलता मिलने वाली है. लेकिन आपको कार्य क्षेत्र में कुछ चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा. कई फ़ैसले वाकई सही साबित होंगे. अपने पुराने संबंधों को फिर अच्छा करने के लिए भी यह समय उपयुक्त है.

बीनू संदल
feedback.chauthiduniya@gmail.com

मेरी दुनिया.... ...धीर

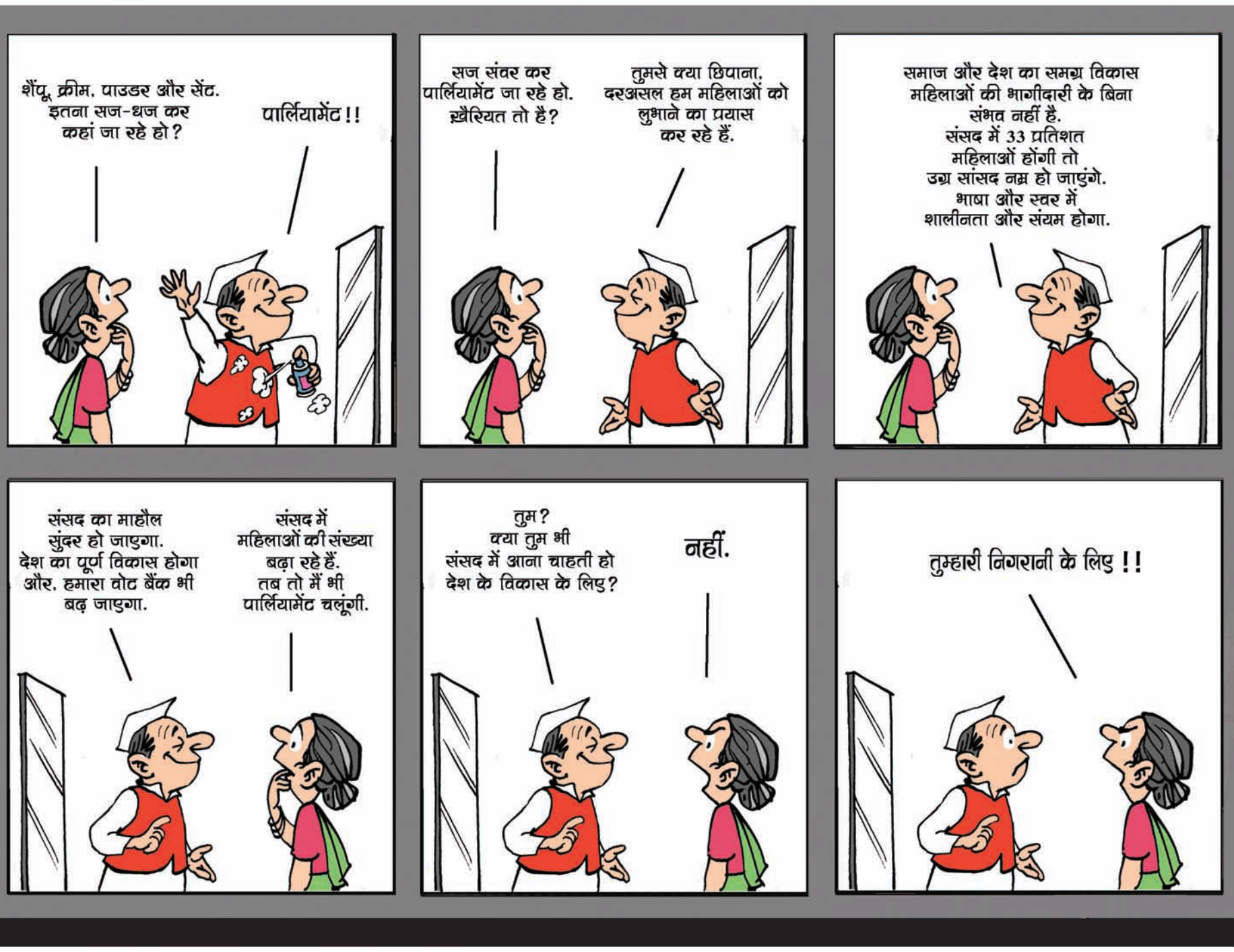

अटकते-भटकते अहम लेखन

अनंत विजय

अभी कुछ दिनों पहले पत्रकारिता के कुछ अबोध छात्रों से रू-ब-रू होने का अवसर मिला. साहित्य में हाथ-पांव मार रहे एक छात्र ने कई सवाल किए, लेकिन अंत में यह कह कर उसने मुझे चौंका दिया कि हिंदी की एक विधा यात्रा वृतांत ख़त्म हो चुकी है. हालांकि उसने बेहद कठोर शब्दों में यह कहा था, लेकिन लगभग सच कहा था. यात्रा वृतांत साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसे लेखकों ने लगभग विस्मृत कर दिया है. हिंदी साहित्य से यह विधा लगभग ख़त्म होती जा रही है. गाहे-बगाहे ही कोई यात्रा वृतांत लिखता हैं. जबकि हिंदी साहित्य में कई ऐसे लेखक हैं जो लगातार यात्रा करते हैं. अपने स्तंभ में अशोक वाजपेयी अवश्य कभी-कभार अपनी यात्रा के बेहद दिलचस्प प्रसंगों का वर्णन संक्षेप में करते हैं, लेकिन एक विधा के तौर पर यह लगभग विस्मृत ही है. पिछले दिनों वरिष्ठ लेखिका मृदुला गर्ग की उनकी यात्रा पर लिखे वृतांत कुछ *अटके कुछ भटके* नाम से पेंग्विन बुक्स, दिल्ली से छपा है. मृदुला गर्ग की छवि हिंदी साहित्य में एक गंभीर कथा लेखिका की है, जिनके उपन्यासों में शहरी आधुनिक नारी की जटिल मानसिकता और द्वंद्व केंद्रीय विषय होते हैं. मृदुला गर्ग को हिंदी में बोल्ड भाषा का इस्तेमाल करने वाली लेखिका के रूप में भी जाना जाता है. उनके उपन्यास *चितकोबरा* और *कठगुलाब* और उसके हिस्से की धूप जब छप कर आए तो हिंदी साहित्य में इन उपन्यासों की भाषा को लेकर ख़ासी चर्चा हुई.

कुछ *अटके कुछ भटके* मृदुला गर्ग की दर्जन भर यात्राओं का विवरण है, जो पहले भी साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में छपकर पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींच चुके हैं. इन दर्जन भर यात्रा विवरणों में सूरीनाम में वर्ष 2003 में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान वर्षावन की यात्रा का बेहद रोचक और दिलचस्प वर्णन है. लगभग सत्तर साल में जवानों जैसे जज़्बे के साथ सूरीनाम के जंगलों में भटकते हुए प्रकृति का आनंद उठाना बड़ी बात है. लेकिन अपने इस संस्मरण में उन्होंने हिंदी के साहित्यकारों की एक कमज़ोरी की तरफ़ जाने-अनजाने इशारा कर दिया. वह है कंजूसी और वादाख़िलाफ़ी. जब अपनी वरिष्ठ सहयोगी के साथ लेखकों का यह व्यवहार है तो वे किसी और के साथ कैसा व्यवहार करते होंगे, इसकी तो सिर्फ़ कल्पना ही की जा सकती है. नाम तो मृदुला गर्ग ने किसी का भी नहीं लिया, लेकिन साहित्यकारों को क़रीब से जानने वाले और साहित्यिक हलचलों पर नज़र रखने वालों को उन्हें पहचानने में दिक़्क़त नहीं होगी. मृदुला गर्ग ने वर्षावन की यात्रा पर साथ चलने के लिए पांच लोगों को तैयार कर लिया था, लेकिन हामी भरने के बावजूद वे लोग नियत समय और जगह पर नहीं आए. चूंकि मृदुला गर्ग ने सात लोगों की बुकिंग की हुई थी, इसलिए उनको विदेशी मुद्रा में अपने सहयोगियों के वादाख़िलाफ़ी का दंड भुगतना पड़ गया.

अगर हम इस पूरी किताब को ध्यान से पढ़ें तो ऐसे कई प्रसंग मिलते हैं जो *बिटविन द लाइन्स* ही पढ़े और समझे जा सकते हैं. इशारों-इशारों में लेखिका कई अहम बातें कह जाती हैं. जैसे जब वह तमाम दिक़्क़तों के बावजूद असम की यात्रा पर जा सकीं और डिब्रूगढ़ में भाषण देने के लिए खड़ी हुईं तो वहां मौजूद बाग़ी छात्र नेताओं ने उनसे हिंदी में भाषण देने का अनुरोध किया. इस संस्मरण में एक वाक्य है जो देश के हुक्मरानों को एक चेतावनी भी है. देश के इतने बड़े भाग ने हिंदी बोलनी-पढ़नी-लिखनी सीखी तो हमने उसका इस्तेमाल देश के एकीकरण के लिए क्यों नहीं किया? बार-बार असम के युवा छात्रों को यह क्यों कहना पड़ रहा था कि हमारी औकात कम इसलिए आंकी जाती है क्योंकि हम मेनलैंड के लोगों की तरह फर्राटे से अंग्रेजी नहीं बोल सकते. मेनलैंड, यानी पूर्वोत्तर को छोड़कर बाक़ी का हिंदुस्तान, जिसकी राजभाषा और राष्ट्रभाषा हिंदी है. एक तरफ़ हम उन्हें दोष देते हैं कि वे देश से जुदा होना चाहते हैं, दूसरी तरफ़ साथ लेने के इस नायाब औजार का तिरस्कार करके हम लगातार उन्हें हाशिए में धकेलते जाते हैं (पृ. 120-121). यह कहकर लेखिका असम समस्या सुलझाने में सरकार की विफलता और ज़मीनी हक़ीक़त दोनों को एक झटके में सामने ला देती हैं.

इस किताब को पढ़ते हुए 1980 में छपे मृदुला गर्ग के उपन्यास *अनित्य* की बरबस याद आ जाती है. वह इसलिए कि उक्त उपन्यास में मृदुला गर्ग ने स्त्री-पुरुष संबंधों के अपने प्रिय विषय को छोड़कर राजनीति को अपने उपन्यास का विषय बनाया था. उस उपन्यास में तीस के दशक से लेकर आज़ादी मिलने के बाद तक के कालखंड को एक बेहद वृहद परिप्रेक्ष्य में उठाया गया था. उस उपन्यास में मृदुला गर्ग कमोबेश हिंसात्मक क्रांति के पक्ष में दिखाई देती हैं, लेकिन *कुछ अटके कुछ भटके* के अपने असम वाले लेख में भाषा को औजार बनाकर देश को जोड़ने की बात करती हैं. इसे हम लेखिका के विचारों की परिपक्वता या विकास के तौर पर रेखांकित कर सकते हैं.

इसके अलावा मृदुला गर्ग ने अपने इन यात्रा वृतांतों में शब्दों और बिंबों का जो प्रयोग किया है, उससे न केवल उनकी भाषा चमक उठती है बल्कि दिलचस्प और रोचक भी हो जाती है. मसलन बारिश के हाथों अचानक पकड़े जाने के रोमांच से हम अब भी अछूते रहे या उन्हीं लिपटती-चिपटती कांटेदार आइवी और झाड़ियों के आगोश से बच-बच कर निकलते हुए या फिर अहसास की ज़मीन पर पहली बार समझ में आया कि सुनसान सांय-सांय क्यों करता है. पहले वाक्य में *बारिश के हाथों पकड़े जाने* या दूसरे में *झाड़ियों के आगोश में* या *सुनसान सांय-सांय*, ये सब ऐसे प्रतीक हैं जिनसे भाषा तो चमकती ही है, पढ़ते वक़्त पाठकों के मन में जहां की बात हो रही होती है वहां का पूरा का पूरा दृश्य भी सामने उपस्थित हो जाता है.

आकार में भले ही यह किताब छोटी हो, लेकिन इसका फलक बहुत ही व्यापक है. असम से लेकर हिरोशिमा, गंगटोक से लेकर पारामारिबो, फिर दिल्ली से लेकर अमेरिका और झुमरी तिलैया तक के व्यक्तिगत अनुभवों को एक व्यापक दृष्टि देते हुए पेश किया गया है. जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि इसके लेखों में *विटविन द लाइन* बहुत कुछ है. इसके एक लेख रंग-रंग कांजीरंगा में हजारीबाग के जंगल में घूमने का और वहां के कड़क फॉरेस्ट अफसर के चित्र के बहाने जंगलों और जंगली पशुओं के ग़ायब होने या कम होने के कारणों की तरफ़ संकेत किया गया है. मृदुला गर्ग की इस किताब के केंद्र में *मैं* है, जो हर लेख में प्रमुखता से मौजूद है. हो सकता है यह विधागत मजबूरी हो, लेकिन इस पूरी किताब को पढ़ने के बाद मैं सिर्फ़ इतना कहना चाहूंगा कि जितना इसमें लिखा है उससे कहीं ज़्यादा संकेतों और इशारों में कही गई बातें हैं. एक तरफ़ यह किताब अगर अपनी रोचकता और सधी हुई भाषा के कारण पाठकों को आनंद से भर देती है, तो दूसरी तरफ़ *विटविन द लाइंस* से पाठकों को सोचने पर मजबूर कर देती है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

जाति की संकीर्णता वर्ण की वजह से नहीं

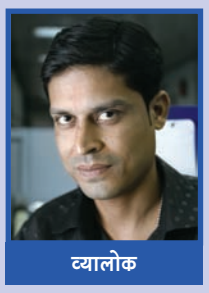

व्यालोक

सनातन धर्म का सबसे बड़ा अभिशाप जाति की दीवारों को माना जाता है, इसकी संकीर्णता को माना जाता है और जातिगत बंधनों को ही सनातन धर्म का सबसे बड़ा दोष और धब्बा भी माना जाता है. यह सत्य भी है. इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती है कि वर्तमान जाति-व्यवस्था की बंदिशों और मानव-मानव के बीच भेदभाव ने सनातन धर्म के मूल तत्व पर ही प्रहार किया है और इसकी उदात्तता और उदारता पर ही प्रश्नचिह्न लगाया है. यह सवाल उचित भी है कि आख़िर *वसुधैव कुटुंबकम* की बात करने वाला धर्म अपने ही कुछ अनुयायियों को अस्पृश्य और त्याज्य क्यों मानता है? धारणा यह है कि जाति व्यवस्था का यह वर्तमान स्वरूप वर्णाश्रम व्यवस्था की ही देन है. यह निहायत ही ग़लत अवधारणा है. इस पर चर्चा विस्तार से आगे, पहले तो यह जानें कि वर्ण क्या है. सनातन धर्म में कर्म के आधार पर मानव समुदाय को चार वर्णों में बांटने की व्यवस्था की गई-चातुर्वर्ण्यं मया स्रष्टं गुण-कर्म विभागशः (गीता)- जो कालांतर में जाति-प्रथा की ज़हर में बदल गई. वैसे कर्म के आधार पर केवल सनातन धर्म में ही मनुष्यों का विभाजन किया गया है, ऐसा नहीं है. यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने भी मनुष्यों की चार जातियों का उल्लेख किया है. इसी तरह पारसियों के सर्वोच्च धर्म ग्रंथ *जेंद अवेस्ता* में भी मनुष्यों की चार जातियों या वर्णों का उल्लेख है. *अवेस्ता* में इनके नाम आथ्रवन (ब्राह्मण), रथैस्तार (क्षत्रिय), वास्त्रयोष (वैश्य) और हुतोक्ष (शूद्र) हैं. सनातन धर्म में जिस तरह द्विजों का उपनयन संस्कार होता था, उसी तरह पारसियों में भी नवजोत (नवजात) संस्कार किया जाता है. इसमें उनको मेखला, पवित्र कुर्ता और टोपी पहनाई जाती है. कहने का मतलब यह कि समाज की व्यवस्था को सुचारू रूप से बनाए और चलाए रखने के लिए सनातन धर्म के अलावा भी कई समाजों में वर्ण के आधार पर मनुष्य को विभाजित करने का रिवाज था.

ठीक इसी तरह, वर्ण व्यवस्था को जाति का पूरक मान लेना भी ग़लत होगा. ऋग्वेद या कहें वैदिक काल तक तो सनातन धर्म त्रिवर्णी ही था. ऋग्वेद में शूद्र शब्द का इस्तेमाल केवल एक बार हुआ है, वह भी पुरुष सूक्त में. वेदों और उपनिषदों का रहस्य उद्घाटित करने वाले जर्मन विद्वान मैक्समूलर और कोलब्रुक दोनों ही पुरुष सूक्त को क्षेपक (बाद में जोड़ा गया) मानते हैं. इन दोनों के अनुसार पुरुष सूक्त की भाषा और शैली इसे ऋग्वेद से अलग खड़ा करती है. इसी तरह राजन्य शब्द का भी प्रयोग ऋग्वेद में एक ही बार हुआ है. ठीक इसी तरह रंग के आधार पर मनुष्यों के वर्ण का निर्धारण महाभारत काल में ही किया गया है. इसी में बताया गया है कि क्षत्रिय लाल रंग के, ब्राह्मण गौर वर्ण के और शूद्र काले रंग के होते हैं. कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि ऋग्वेद काल तक सनातन धर्म में त्रिवर्णों का ही उल्लेख था. साथ ही, वर्ण व्यवस्था में शूद्रों को सबसे नीचे का और अधिकाधिक बंधनों का पायदान भी मनुस्मृति के बाद ही दिया गया. मनुस्मृति में ही यह तय कर दिया गया कि शूद्रों का काम केवल द्विजों की सेवा करना है, ब्राह्मण अपनी मर्ज़ी से जब और जहां चाहें, शूद्रों को भेज सकते हैं और जितनी चाहें उतनी ताड़ना कर सकते हैं. आज के दौर तक आते-आते निश्चय ही जाति-व्यवस्था अपने सबसे गर्हित और पतनशील रूप में दिखाई पड़ती है. कैसी अचरज की बात है कि जो सनातन धर्म अपने अनुयायियों को चिंतन और वाणी की पूरी स्वतंत्रता देता है, वही सनातन धर्म व्यवहार के स्तर पर बिल्कुल कठोर है. कोई भी सनातनी व्यवहार और कर्म के स्तर पर जाति-प्रथा की अवहेलना नहीं कर सकता. सबसे निंदा की बात यह है कि शुरुआती चार वर्णों से आज शताधिक जातियां बन गई हैं, और उनमें अंत्यज और अस्पृश्य भी शामिल हैं. एक बात और ग़ौर करने वाली यह है कि वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था अपने शुरुआती रूप में काफी लचीली थी. तभी तो ऋग्वेद के दशम मंडल के 102वें सूक्त का ऋषि कहता है-मैं कवि हूं, मेरा पिता वैद्य है और मेरी मां पिसान करती है. इसी तरह एक ही क्षत्रिय गाधि (पुरुरवा के वंशज) के पुत्र विश्वामित्र तो क्षत्रिय ही रहे, लेकिन उनके जामाता ऋचीक ब्राह्मण थे. इसी तरह गाड़ीवान रैक्व को भी उपनिषदों का ऋषि माना गया है. यहां तक कि जाबाला पुत्र सत्यकाम को भी ब्रह्मविद्या के रहस्य का उद्घाटन करने लायक माना गया है, जबकि उनकी माता जाबाला को ही यह नहीं पता था कि वह किस पुरुष के औरस से पैदा हुए हैं. वेदकालीन राजा सुदास शूद्र थे और वह राजर्षि विश्वामित्र के संरक्षक थे. सुदास ने अश्वमेध भी किया था, इसका भी उल्लेख आया है. ऐसे कई उदाहरण उपनिषदों, वेदों और पुराणों में मिल जाते हैं. कहने का मतलब यह कि प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था का यह घटिया स्वरूप देखने को नहीं मिलता था, जो आज चारों ओर से सनातन धर्म को अपनी जकड़ में लिए हुए है. कोई भी व्यक्ति किसी भी जाति से दूसरी जाति में संक्रमण कर सकता था और उसकी जाति का निर्धारण मुख्यतः उसके कर्म से ही होता था. गंगा भी इलाहाबाद और पटना आकर काफी दूषित हो जाती है, किंतु उसमें गंगा के उद्गम का तो कोई दोष नहीं. यही बात सनातन धर्म के साथ भी है. जाति प्रथा पर विस्तार से चर्चा अगले अंकों में.

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि भेसाड़िया ने मुंडागली में छापा मारने के बाद इक़बाल को अपने पास बुलाया, क्या हुआ इसके आगे-पढ़िए इस अंक में...

मुसलमान

पहली परीक्षा में इक़बाल पहले नंबर पर आया था, दूसरी दो में क्रमशः तीसरे और दूसरे नंबर पर आया था. ख़ासतौर से गणित और विज्ञान में उसे सबसे अधिक नंबर मिले थे. प्रोग्रेस-बुक बंद कर उसे पाठ्य-पुस्तकों के ढेर पर वापस रखते हुए, जैसे मन-ही-मन बड़बड़ाता हो ऐसे कहा, पढ़ने में अव्वल है, फिर भी...

फिर भी क्या साहब? इक़बाल से बिना पूछे नहीं रहा गया.

एकाएक उसकी आवाज़ सख्त हो गई, बेटा मेरे ये बाल धूप में नहीं सफेद हुए, क्या समझा? तेरी चालाकी यहां नहीं चलेगी. ज़्यादा होशियारी दिखाई तो मार-मारकर चमड़ी उधेड़ दूंगा. दांत पीसकर कहते हुए उसने ज़ोर से अपना हाथ टेबल पर दे मारा. उस पर रखा पेपरवेट उछलकर फिर अपनी जगह बैठ गया.

इक़बाल रो पड़ा. रोते-रोते घुमा-फिराकर उसने अपना गुनाह क़बूल कर लिया, साहब मेरे पापा हयात नहीं. घर का ख़र्च, दो छोटे भाइयों का ख़र्च, स्कूल की फीस-ये सारी ज़िम्मेदारियां मेरे सिर पर हैं.

तो क्या ट्रक भर-भरकर तस्करी का माल उतारने का?

तब क्या करूं?

हूं... कुछ देर सोचने के बाद भेसाड़िया ने पूछा, यल्ली गेट देखा है?

यल्ली गेट पुलिस स्टेशन के अंतर्गत घड़ियाल गोदी, भाऊचा धक्का आदि क्षेत्र आते हैं. अली नामक लड़के के साथ इक़बाल ने तस्करी के धंधे की शुरुआत यहीं से की थी. (हाजी मस्तान और माटुंगा, सायन-कोलीवाड़ा के दादा वरदराजन का निर्माण भी यहीं से हुआ था.)

भेसाड़िया के प्रश्न का उत्तर देते हुए इक़बाल ने झूठ बोला, नहीं साहब.

गोवा से आने वाली पैसेंजर बोटें वहीं लंगर डालती हैं.

ऐसा मैंने सुना है. वह अच्छी तरह जानता था कि इन जहाज़ों में यात्रियों के साथ तस्करी का माल भी आता था.

वहां से दो-तीन बोरियां ख़रीदकर घर का ख़र्च चलाने का. भेसाड़िया असली बात पर आया, पूरी की पूरी ट्रक घर में नहीं उंडेलना चाहिए, समझे न, बेटा?

जी, साहब पर...

पर क्या?

वहां पुलिस की चौकी है.

इक़बाल का इशारा यल्ली गेट पुलिस-स्टेशन की तरफ़ था. वहां बिना पुलिस की मदद के गोदी से माल की हेराफेरी करना ख़तरे से ख़ाली नहीं था.

दाभोलकर साहब को मेरा नाम देना. भेसाड़िया ने उसकी यह समस्या भी हल कर दी, वे वहां के सब-इंस्पेक्टर हैं.

अब मैं इजाज़त लूं, साहब?

उसका पूरा पता और उसके पड़ोसी का रिक्वेस्ट नंबर नोट कर भेसाड़िया ने मुस्कुराकर उसे विदा किया.

घर लौटकर इक़बाल ने पहला काम यह किया कि जितनी बोरियां भरी थीं, वे सब जसबीर सिंह के ग्राहकों को पहुंचा दीं. फिर पाना लाकर खुले पलंग के सभी हिस्से फिट करके पलंग को उसकी असली जगह पर खड़ा कर दिया. अब घर में जोख़िम उठाने की ज़रूरत नहीं थी. भेसाड़िया के दिखाए रास्ते पर चलकर उसे अपनी ज़रूरत भर का पैसा मिल जाने वाला था.

कुछ कहते या बोलते समय जुबान लड़खड़ाने का डर था. चुपचाप मैंने अपनी फाइल से एक कार्टून निकालकर उनके सामने मेज पर रखा. अब उनकी समझ में आया कि मैं एक उभरता हुआ चित्रकार था.

डॉ. चीनवाला द्वारा दिखाए मार्ग पर चलने से मुझे (लेखक को) भी अपनी ज़रूरत भर का पैसा मिल जाने की उम्मीद थी. फुरसत के समय में मैं कार्टून बनाता. मार्गदर्शन के लिए वॉल्ट डिज़्नी के एक फटे कॉमिक्स के सिवा मेरे पास दूसरा कुछ नहीं था. अपने बनाए कार्टूनों को लेकर मैं सप्ताह में एक दिन डॉ. चीनवाला के घर जाता. वे और चित्रकार यूसुफ धाला, दोनों रुचि लेकर मेरा काम देखते, दोनों मेरी रेखाओं पर चर्चा करते और मुझे प्रोत्साहन देते.

कला के क्षेत्र में मेरा उत्साह देख यूसुफ धाला ने मुझे कुमार (साहित्य और कला की गुजराती पत्रिका) की पुरानी प्रतियों की एक फाइल दी. एक ही महीने के अंदर इस फाइल के एक-एक चित्र की दस-दस नकलों के ढेर मेरे पास तैयार हो गए. यही नहीं, अब मैं नकल की सतह से उभरकर मौलिक रेखाचित्र और कार्टून बनाने लगा था.

आबिद! मेरे नए कार्टूनों को देख प्रसन्न होते हुए डॉ. चीनवाला ने कहा, रेखाचित्र को बेचना मुश्किल होता है, पर तुम्हारे ये कार्टून आसानी से बेचे जा सकते हैं.

मेरे मौलिक कार्टूनों में से बेहतरीन दो कार्टून उन्होंने अलग किए. मैंने अपना शक ज़ाहिर करते हुए पूछा, कौन खरीदेगा?

किसी अख़बार के संपादक को दिखाओगे तो वह खुशी से इन्हें स्वीकार कर लेगा.

उन्होंने मुझे दो नाम भी सुझाए-एक दैनिक था और दूसरा साप्ताहिक. दैनिक अख़बार था टाइम्स ऑफ इंडिया और साप्ताहिक पत्रिका का नाम था चित्रलेखा.

मुझमें न किसी अख़बार के दफ़्तर में झांकने की हिम्मत थी, न किसी संपादक के रूबरू होने का आत्मविश्वास था. डॉ. चीनवाला के साथ हुई बातचीत आई-गई हो गई.

उसी वर्ष मैं स्काउट में भर्ती हुआ था. हर साल बंबई के स्काउट खरी कमाई दिवस मनाते थे. उस दिन हम लोग स्काउट की पोशाक पहनकर मेहनत की कमाई जुटाने निकल पड़ते. कोई बूट-पॉलिश का सामान लेकर फुटपाथ पर बैठता तो कोई मोटरें धोने का काम करता. किसी के हाथ में अपने हाथों बनाए हुए सैंडविच की ट्रे रहती तो कोई घर-घर दस्तक देकर अपने हाथों बनाए हुए काग़ज़ के फूल बेचता.

मुझे लगा अपने कार्टूनों को बेचने का इससे बढ़िया मौक़ा हाथ नहीं आएगा. थोड़ी हिम्मत जुटाकर आज भी अगर मैं किसी संपादक के सामने नहीं खड़ा हुआ, तो मेरा भय और संकोच कभी दूर नहीं होगा.

डॉ. चीनवाल द्वारा चुने गए दोनों कार्टूनों को मैंने अलग-अलग पोस्टर पेपर पर सफाई से चिपकाया और स्काउट की पोशाक पहनकर घर से चल पड़ा. डोंगरी से फोर्ट मार्केट, चित्रलेखा के दफ़्तर तक पहुंचने का शॉर्ट-कट मुझे मालूम था. वहां तक पहुंचने में मुझे मुश्किल से बीसेक मिनट लगे होंगे. पर चित्रलेखा कार्यालय के सामने खड़ा हुआ तो लगा जैसे मेरे पैर ज़मीन में गड़ गए हों... जिस उत्साह से मैं यहां तक आया था, वह कपूर की तरह हवा में उड़ गया. घबराहट से मेरे माथे पर पसीने की बूंदें उभर आईं.

मैं वहां से उल्टे पांव लौटने ही वाला था कि चपरासी की नज़र मुझ पर पड़ी. उसने पूछा, किससे मिलना है ?

जी... मैंने झिझकते हुए उसे बताया संपादक जी से. अभी आए नहीं होंगे.

आ गए हैं. कहते हुए उसने अंदर के ज़ीने की ओर उंगली दिखाई, ऊपर चले जाओ.

किसी मकान में सेंध लगाने कोई चोर जा रहा हो, ऐसे मैं दाख़िल हुआ. धीरे-धीरे सीढ़ियां चढ़कर मैं ऊपर आया तो सबसे पहले मेरी निगाह लकड़ी के टेबुल-कुर्सी पर बैठे एक युवक (गुजराती के प्रसिद्ध कथाकार-पत्रकार हरकिशन मेहता) पर पड़ी. सिर झुकाकर वह एक लेख लिखने में व्यस्त था. मैंने सोचा वही संपादक होंगे.

मैं चुपचाप उसके सामने खड़ा हो गया.

कुछ देर बाद पन्ना पलटते हुए उसने सिर उठाकर मेरी ओर देखा. मैं अपने कार्टूनों की फाइल उसके सामने बढ़ाने लगा तो उसने पास की केबिन की ओर इशारा किया. मैं कुछ समझ पाऊं, इसके पहले उसकी क़लम फिर से काग़ज़ पर दौड़ने लगी. अब केबिन में जाने के सिवा और कोई चारा नहीं था.

धीरे से दरवाज़ा खिसकाकर मैं केबिन में दाख़िल हुआ. चित्रलेखा के संस्थापक-संपादक श्री वजु कोटक ने अपना चेहरा घुमाकर मेरी ओर देखा. अपने सामने स्काउट की पोशाक में खड़े विद्यार्थी को देखकर उनके चेहरे पर विस्मय उभर आया.

शायद उन्होंने सोचा था कि मैं उनसे चंदा-वंदा मांगने आया था. लेकिन मेरे हाथ में न कोई डिब्बा था, न रसीद-बुक, बल्कि एक फाइल थी. एक-दो पल मेरी ओर देखकर उन्होंने हाथ के इशारे से मुझे बैठने को कहा.

कुछ कहते या बोलते समय जुबान लड़खड़ाने का डर था. चुपचाप मैंने अपनी फाइल से एक कार्टून निकालकर उनके सामने मेज पर रखा. अब उनकी समझ में आया कि मैं एक उभरता हुआ चित्रकार था. कार्टून उठाकर उन्होंने अपनी पीठ टिकाई और एकाग्र होकर उसे देखने लगे. बेताबी से परीक्षा के परिणाम की प्रतीक्षा कर रहा होऊं, ऐसे मैं मौन रहा.

जो कार्टून वजु कोटक देख रहे थे, वह तीन हिस्सों में बंटी एक चित्रपट्टी थी. पहले ख़ाने में रास्ते पर खड़े एक पुलिसवाले को दिखाया गया था और पास के मकान से उठ रही चीखों के शब्द थे, मदद, मदद! ख़ून, ख़ून!

दूसरे ख़ाने में वही पुलिसवाला तेज़ी से मकान की सीढ़ियां चढ़ रहा था. आख़िरी ख़ाने में वह भौंचक खड़ा रेडियो-नाटक सुनती महिला को फटी आंखों से देख रहा था. असल में जो चीखें उसने सुनी थीं, वह रेडियो-नाटक का संवाद था.

तीन हिस्सों वाली उस चित्रपट्टी को देखने में बमुश्किल पांच सेकंड लग सकते हैं, पर ये चंद पल मेरे लिए युग हो गए. मेरी सांस थम गई थीं. ऐसे लगा जैसे अभी संपादक महोदय कह देंगे कि मेरी चित्रपट्टी उनके किसी काम की नहीं. मुझ जैसे नौसिखियों को उनके जैसे धुरंधर पत्रकार का समय नष्ट नहीं करना चाहिए.

(अगले अंक में जारी)

अनार के छिलके उतारना हुआ आसान

फलों में अनार हमेशा से आदरणीय रहा है. अपने गुणों के कारण वह सबका पसंदीदा रहा है. स्वास्थ्य संबंधी गुणों से तो सब वाक़िफ़ हैं ही, आर्थिक नज़र से भी वह बड़ा लाभकारी होता है. उसके दम पर देश के कई किसानों की रोज़ी-रोटी चलती है. हाल फ़िलहाल में अनार की खेती में किसानों की रुचि और बढ़ी है. अनार ही नहीं, बल्कि कई दूसरे फलों की खेती भी किसानों के बीच तेज़ी से लोकप्रिय हो रही है. यह ठीक है कि इनकी खेती बहुत फ़ायदेमंद होती है, लेकिन इनके रख-रखाव में काफी परेशानी भी आती है. अनार की खेती करने वाले किसानों की समस्याओं को हल करने के लिए भारत के लुधियाना में स्थित केंद्रीय पोस्ट-हारवेस्ट इंजीनियरिंग और तकनीक संस्थान ने एक नए यंत्र का आविष्कार किया है. अनार के छिलके को निकालने वाला यह औजार फल को तोड़ने से लेकर उसके छिलके निकालने तक के काम को आसान कर देता है. हाथ की ताक़त से चलाए जाने वाला यह औजार न केवल अनार को पेड़ की शाखों से तोड़ता है, बल्कि इसके बाद खाने योग्य हिस्से को भी बाहर निकाल सकता है. इस तरह यह अनार इकट्ठा करने के समय होने वाली समस्याओं से भी बचाता है, क्योंकि एक ख़राब अनार भी पूरे ढेर को बर्बाद कर सकता है. साथ ही अनार के छिलके को निकालने का तरीक़ा भी काफी आसान है. अनार की बाहरी परत सख्त होती है. उसे हटाने के परंपरागत तरीक़े में उन्हें डंडों से पीटा जाता है, इसमें कई फल ख़राब भी होते हैं. इस यंत्र से इस नुकसान को भी कम किया जा सकेगा. भारत के महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, आंध्र, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में अनार की खेती व्यावसायिक पैमाने पर हो रही है. इसके अलावा पंजाब और राजस्थान में भी इसे बढ़ाने की कोशिश चल रही है. ऐसे में ज़रूरत और तकनीक के संगम से बना यह औजार बड़े काम का साबित हो सकता है. इससे अनार के उत्पादन में लगने वाली मेहनत और लागत को कम किया जा सकेगा. यानी एक अनार के पीछे सौ के बीमार पड़ने की ज़रूरत नहीं होगी.

दस सबसे ख़तरनाक वेब सर्च इंजन

वेब सर्च करना भी अब नेट यूजर्स के लिए परेशानी का सबब बनते जा रहा है. वे हैकर के सीधे निशाने पर आ गए हैं. ख़ास कर वे जो संगीत और गेम्स आदि से जुड़ी सामग्री डाउनलोड करते रहते हैं. इसलिए अगर आप ऑनलाइन कुछ डाउन लोड कर रहे हैं, तो ज़रा संभल कर रहें. मैकएफी कंपनी ने दस ऐसे ही ख़तरनाक वेबसाइटों का पता लगाया है, जो आपके कंप्यूटर को अपनी चपेट में ले सकते हैं. मैकएफी ने इस सिलसिले में हाल ही में एक रिपोर्ट जारी की है. इसमें वेबसाइटों को लेकर काफी जानकारी दी गई है. साथ ही ख़तरनाक साइटों के नाम-पते भी उसने दिए हैं. द वेब्स मोस्ट डेंजरस सर्च टर्म्स के नाम से प्रकाशित इस रिपोर्ट में यूजर को चेताया गया है कि वे कुछ भी संभल कर डाउन लोड करें. विशेषज्ञों ने वर्ष 2008 के 2,600 स्रोतों से इनका पता लगाया. जिनमें गूगल जटजिस्ट और याहू भी शामिल हैं. मैकएफी कंपनी के रिसर्चर और इस रिपोर्ट के नेतृत्वकर्ता शाने केट्स ने कहा है कि सर्च इंजन हमलोगों के लिए ऑन रैंप, हाईवे और ऑफ रैंप हैं. कुल

मिलाकर ये यूजर के लिए सब कुछ होते हैं. फिर भी हैकिंग करने वाले काफी चतुर और होशियार हैं. रिसर्चरों ने पाया कि हैकर ऐसे लोगों को अपना शिकार बनाते हैं, जो ऑन लाइन डाउन लोड करने के लिए तैयार रहते हैं. जैसे रिंग टोन डाउनलोड करना या फिर किसी साइट को लॉग इन करना. उनके निशाने पर वे लोग अधिक हैं जो इंटरनेट से फ्री म्यूज़िक डाउनलोड करते हैं. उन्होंने उस ख़तरे का मूल्यांकन उसके लिंक के हिसाब से किया है. जैसे धुन को डाउन लोड करने का औसत 14.8 है. अगर देखा जाए तो ऑन लाइन गेम, फ्री म्यूजिक और स्क्रीन सेवर डाउन लोड करना सबसे ख़तरनाक है. क्योंकि यूजर्स तुरंत इसे अपने नाम और ई- मेल ऐड्रेस पर इंस्टॉल या रजिस्टर करने में लग जाते हैं. लिहाजा वे हैकर के चंगुल में फंस जाते हैं.

अमेरिका में ख़तरनाक घोषित किए गए दस वेबसाइट

1. वर्ड अनस्क्रमबलर
2. लिरिक्स
3. माई स्पेस
4. फ्री म्यूज़िक डाउनलोड
5. फ्लेस, वेबर गेल, जॉन्स एंड लेजक विन्स 4※100एम रिले
6. फ्री म्यूज़िक
7. गेम चिट
8. प्रिंटेबल फिल इन पजल्स
9. फ्री रिंगटोन
10. सोलिटेयर

खुल जा फोन-फोन

जेब में भारी सा सेलफोन हर वक़्त अपनी मौजूदगी का अहसास कराता रहता है. कई बार तो इसकी वजह से दिक़्कत भी हो जाती है लेकिन अब और नहीं. अब नया पैकेट फोन बाज़ार में आ गया है. यह इतना हल्का और छोटा सेलफोन है कि आपके पास रहते हुए भी इसका अहसास आपको नहीं होगा. इसका आकार महज़ पांच सेंटीमीटर लंबा और चौड़ा है और इसकी मोटाई एक सेंटीमीटर से भी कम है.

यह इतना छोटा है कि आपकी जेब में सेलफोन रहेगा, लेकिन आपको महसूस भी नहीं होगा. इसके डिज़ाइनर तुर्की के अमीर रिफत लिसक हैं. उन्हें अपने इस फोन की डिज़ाइन के लिए कांसेप्ट फोन की श्रेणी में इस्तांबुल के डिज़ाइन वीक के सर्वश्रेष्ठ डिज़ाइन का अवार्ड भी मिला. उन्होंने कहा कि इसे डिज़ाइन करने की प्रेरणा मुझे गत्ता के डिब्बों से मिली. यह डिज़ाइन बहुत ही साधारण है. यह वर्गाकार फोन चारों तरफ से खुलता है. यूं तो यह किसी आम सेलफोन की तरह ही दिखता है, लेकिन खुलने के बाद इसकी हर परत पर कोई न कोई काम की चीज़ होती है. इसमें स्पीकर और स्क्रीन ऊपर वाले हिस्से पर हैं. एक माइक्रोफोन है जो नीचे लगा हुआ है और नंबर डायल करने वाला पैड बीच में है. अगर एक बार आप इसको खोलते हैं तो इसका चारों साइड ख़ुद-ब-ख़ुद खुल जाएंगे. इस फोन में आम स्मार्ट फोनों की तरह ही सारी सुविधाएं हैं. इसके ज़रिए आप नेट भी सर्फ कर सकते हैं और ई-मेल भी भेज सकते हैं. यह देखने में इतना प्यारा है कि इसे ख़रीदने को किसी का भी मन मचल उठता है.

कूल कूल कैमरा

कैमरा प्रेमियों के लिए एक ख़ुशखबरी है. पेंटैक्स ने के-7 नाम से एक कैमरा मार्केट में उतारा है. इसकी मैग्निश्यम बॉडी तो कमाल की है, जो धूल रोधी और वाटर प्रूफ है. वीडियो लेने के लिए इसमें बेहतरीन 720 पिक्सल हाई डिफिनेशन क्षमता है. रेजॉलुशन जहां 1280*720 है, वहीं इससे एक सेकेंड में तीस फ्रेम लिए जा सकते हैं. इसमें एचडीआर नामक एक नया फीचर है, जो एक ही इमेज के तीन सर्वश्रेष्ठ शॉट्स को एक साथ जोड़ता है. के-7 लगातार एक सेकेंड में 5.2 फ्रेम की गति से तस्वीरें ले सकता है. इसमें व्यू फाइंडर भी नया है. पेंटैक्स ने कहा कि एक बार चार्ज करने के बाद इससे 740 फोटो खींचे जा सकते हैं. अगर एक साथ कैमरे में इतने फीचर मौजूद हों तो इसकी तरफ़ आकर्षित होना लाज़िमी है. इसकी डिज़ाइनिंग भी बिल्कुल नए तरीक़े से की गई है. यानी आम के आम गुठलियों के दाम. मतलब यह कि फीचर के साथ लुक भी बिंदास.

बेकार का गैजेट

काम के गैजेट से तो हम आपको रू-ब-रू कराते ही रहते हैं, लेकिन आज आपको एक ऐसे गैजेट के बारे में बताते हैं जिसकी उपयोगिता के बारे में आपको अपनी राय ख़ुद बनानी होगी. यह एक ऐसी हॉलीडे लाइट (लड़ी वाली लाइट) है जो सूरज की रोशनी से ही चलती है. यह उतनी ही देर जलती है जितनी देर इस पर सूरज की रोशनी पड़ती है. इसकी बैटरी सौर्य ऊर्जा से चलती है लेकिन पावर जमा नहीं कर पाती. अब आप ही सोचिए, ऐसी लाइट का क्या काम. इसी को कहते हैं सूरज को चिराग़ दिखाना.

डीटीएच अब पहुंचेगा डायरेक्ट टू गांव

डायरेक्ट टू होम (डीटीएच) कंपनियों की दौड़ अब गांवों में हो रही है. बीते चार से छह महीने के दौरान क़रीब आठ से दस लाख नए ग्राहक जोड़ने में कामयाब रहीं कंपनियों को समझ आ गया है कि डीटीएच का बाज़ार केवल शहरों तक सीमित नहीं हैं. इसलिए इस सेंगमेंट के खिलाड़ी जहां शहर के केबल एवं सैटेलाइट ग्राहकों को आकर्षित करने में जुटे हैं, वहीं उन्होंने छोटे शहरों और गांवों पर भी अपनी निगाहें गड़ा दी हैं. ख़ास तौर पर उनकी नज़रें उन मकानों पर है, जहां केबल या सैटेलाइट टेलीविजन नहीं हैं. मसलन, एयरटेल डिजिटल टेलिविजन टियर-2 और टियर-3 के शहरों तक पहुंचने के लिए अपने बड़े टेलिकॉम डिस्ट्रीब्यूशन चैनलों का फ़ायदा उठाएगी. भारती एयरटेल डीटीएच के मुख्य कार्यकारी अधिकारी अजय पुरी के मुताबिक कंपनी की शुरुआती रणनीति 250 शहरों में मौजूदगी बनाने की थी. अब उनकी योजना अतिरिक्त शहरों और कस्बों तक पहुंचने की है. ग़ैर केबल एवं सैटेलाइट घर और छोटे कस्बे भविष्य मे ख़ासे अहम साबित होंगे. कंपनियां छोटे शहरों के ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए किफ़ायती दरों पर काम कर रही है. इसलिए एयरटेल डिजिटल टीवी ने हाल ही में सी स्कीम लांच की है. जिसमें नए डीटीएच ग्राहकों को एयरटेल फोन कनेक्शन पर मुफ़्त टॉकटाइम मिलेगा. डीटीएच सेवा मुहैया कराने वाली टाटा स्काई के चीफ मार्केटिंग ऑफिसर विक्रम मेहरा ने बताया कि हिंदी में इलेक्ट्रॉनिक गाइड या ईपीजी पेश करने के बाद छोटे शहरों से आने वाली मांग में बढ़ोतरी हुई है. ईपीजी से डीटीएच ग्राहक को अलग-अलग चैनलों के बीच नेविगेट करने और दूसरी सेवाओं तक पहुंच बनाने में आसानी होती है. यानी यह सिर्फ़ ग़लतफहमी थी कि डीटीएच एक शहरी उत्पाद होगा. छोटे शहरों और ग्रामीण इलाक़ों के ग्राहक काफी आकांक्षाएं रखते हैं और वे बेहतर विकल्पों के लिए जेब ढीली करने को भी तैयार हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

हॉकी इंडिया बनाने वालों की नीयत में है खोट

पिछले कुछ महीने की चंद तस्वीरें हैं, जिन पर निगाह डाल लेना ही काफी कुछ साफ कर देता है. पहली तस्वीर... जगह-भोपाल. जूनियर टीम का कैंप. तैयारी है जूनियर वर्ल्ड कप हॉकी की. वहां कुछ लोग छुप कर तस्वीरें लेने की कोशिश कर रहे हैं. सवाल ज़रूर उठा होगा कि छुप कर क्यों? वह इसलिए, क्योंकि उन्हें खेल या खिलाड़ी से कुछ लेना-देना नहीं. उन्हें सिर्फ़ देखना है कि ये लोग प्रायोजक की टी-शर्ट पहन रहे हैं या नहीं. अगर नहीं पहन रहे, तो कोर्ट में केस मज़बूत होता है. दिलचस्प यह है कि स्पॉन्सर की तरफ़ से प्लेइंग किट नहीं आ रही थी. कारण? स्पॉन्सर सहारा इंडिया परिवार के मुताबिक एडहॉक कमेटी उनके एक भी मेल का जवाब नहीं दे रही थी, जो आईएचएफ के निलंबन के बाद इस देश में हॉकी चला रही थी. एडहॉक कमेटी के मुताबिक प्रायोजक ने रुचि नहीं दिखाई. इन आरोपों-प्रत्यारोपों के बीच मामला कोर्ट चला गया और इस बीच जूनियर टीम के बच्चे वही पुरानी टी-शर्ट पहनते रहे. जब फट गई, तो सपोर्ट स्टाफ की टी-शर्ट दी गई. कारण यह कि वे आम टी-शर्ट नहीं पहन सकते. प्रायोजक का लोगो चाहिए. और लोगो वाली टी-शर्ट है नहीं. यह उस टीम की दास्तां है, जो किसी छोटे-मोटे नहीं बल्कि जूनियर वर्ल्ड कप की तैयारी कर रही थी.

अब दूसरी तस्वीर. टीम इंडिया सुल्तान अजलान शाह कप जीतकर आई. टीम जीती, पर इसका कोई रिकॉर्ड नहीं. किसी भी चैनल पर दिखाने की ज़रूरत नहीं समझी गई. जिस समय यह टूर्नामेंट या फिर उसके बाद एशिया कप चल रहा था, तब सहारा इंडिया परिवार और बंगाल हॉकी संघ से जुड़े जेबी रॉय फेडरेशन में चुनाव को लेकर जद्दोजहद कर रहे थे. दूसरी तरफ़, चुनाव से कैसे दूर रहना है, इसकी रणनीति बनाने का काम सुरेश कलमाडी देख रहे थे. कलमाडी साहब कांग्रेस के हैं, जिसकी सरकार है. लेकिन वह दूरदर्शन को इसके लिए राजी नहीं कर पाए कि राष्ट्रीय खेल का सीधा प्रसारण या हाईलाइट्स का ही इंतजाम कर ले. रॉय साहब के परिवार से कई चैनल हैं, लेकिन एक भी चैनल ऐसा नहीं था, जो उस खेल को बढ़ावा देने के लिए इसे टीवी पर दिखाने का इंतज़ाम करता. प्रायोजक से लेकर आयोजक तक सब होना चाहते हैं, लेकिन खेल और खिलाड़ी की किसे कितनी परवाह है, इसे समझने के लिए ये दोनों तस्वीरें काफी होंगी.

इस सोच और ऐसी परवाह के साथ हॉकी इंडिया का आगमन हुआ है. सारे क़ानूनी दांव-पेचों को ध्यान में रखते हुए आगमन हुआ है. भारतीय ओलंपिक संघ से जुड़े तमाम अधिकारी आपसी बातचीत में यह स्वीकार करते हैं कि हॉकी इंडिया का गठन ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से हुआ है. वे यह मानते हैं कि जनरल असेंबली के बग़ैर यह फ़ैसला लिया ही नहीं जा सकता था. लेकिन जैसे ही आधिकारिक तौर पर बात शुरू होती है, वे देश में हॉकी के भले का गान गाने लगते हैं. वे बताने लगते हैं कि कितना भला हुआ है. लेकिन यह याद रखना चाहिए कि जिन टूर्नामेंट की चर्चा एडहॉक कमेटी या भारतीय ओलंपिक संघ करता है, उन सभी में दूसरे नहीं, तीसरे दर्ज़े की विदेशी टीमें आई थीं. जिस टूर्नामेंट में अच्छी टीम आई, वह एशिया कप था, जिसमें भारत पांचवें नंबर पर आया. लेकिन कोई जानना नहीं चाहता कि टीम में क्या कमी है. वहां कैसे सुधार हो सकता है. ये शायद बहुत छोटी बातें हैं. भारतीय ओलंपिक संघ सिर्फ़ बड़ी बातों पर ध्यान देता है. बड़ी बात यानी बड़े आयोजन. विश्व कप हॉकी का आयोजन न छिन जाए, इस डर से सब करना है. लेकिन उस विश्व कप में भारत कौन से नंबर पर आएगा, किसी को कोई फ़िक्र नहीं.

विश्व कप की मेजबानी का मामला है, जिसकी वजह से हॉकी इंडिया बना. क़ानून को ताक पर रखकर बना. यह बताते हुए बना कि अगर महिला और पुरुष हॉकी संघ एक प्लेटफॉर्म पर नहीं आएंगे, तो वर्ल्ड कप छिन जाएगा. पहला सवाल, क्या भारत ने मेजबानी मांगी थी? जी नहीं, यह मेजबानी भारत को इसलिए मिली, क्योंकि तब कोई देश वर्ल्ड कप कराने को बहुत इच्छुक नहीं था. अब है. मलेशिया कराना चाहता है. लेकिन सवाल यहां ज़्यादा बड़ा है. जिस मलेशिया का नाम लेकर एफआईएच डरा रहा है, वहां भी महिला और पुरुषों की एक फेडरेशन नहीं है. न ही पाकिस्तान में है. ऐसे तमाम मुल्क हैं, जहां दोनों फेडरेशन अलग-अलग काम कर रही हैं. उन्हें एफआईएच का कोई डर नहीं. उनसे एफआईएच कुछ नहीं छीन रहा. लेकिन भारत को डर है. इतना डर कि उसके लिए क़ानून का ध्यान भी न रखा जाए.

अगर केपीएस गिल यह सवाल करते हैं कि क्या विदेशी लोग हमारे फेडरेशन के संविधान लिखेंगे, तो यक़ीनन इसमें महत्व दिखाई देता है. विश्व कप आयोजन तक हॉकी फेडरशन, जिसे अब हॉकी इंडिया कहा जा रहा है, उसे अपने क़ब्ज़े में रखने की कोशिश दिखाती है कि बड़े आयोजन में पब्लिसिटी की भूख क्या कुछ करा सकती है. लेकिन भारतीय ओलंपिक संघ और देश के तमाम हॉकी एसोसिएशन के बीच चलती जंग में एक मुद्दा कहीं रह गया. हॉकी इंडिया बन गया, लेकिन न तो हॉकी की बात की गई, न इंडिया की. खिलाड़ी अब भी 15 से 20 डॉलर प्रति दिन लेकर टूर्नामेंट खेलते हैं, जिसे लेकर आप यूरोपीय देशों में दो लोगों को ढंग की जगह पर चाय तक नहीं पिला सकते. लेकिन उनकी बात कोई नहीं करता. इसलिए कि उनकी बात न करने से कुर्सी नहीं छिनेगी. वर्ल्ड कप नहीं छिनेगा. वे तो मजबूर हैं, खेलते रहेंगे. देश की हॉकी भी मजबूर है. उसे ये सब झेलना है. जो लोग मजबूर नहीं हैं, वे दो धड़ों में बंटे हैं. एक वे, जो भारतीय ओलंपिक संघ के साथ हैं और दूसरे वे, जो उसके ख़िलाफ़ हैं. लेकिन दोनों तरफ़ से सिर्फ़ हॉकी इंडिया का नाम सुनाई देता है, इंडियन हॉकी का नहीं.

राकेश चतुर्वेदी

feedback.chauthiduniya@gmail.com

भीगी बिल्ली बन कर बाहर हो गए कंगारू

ट्वेंटी-20 विश्व कप के पहले ही मैच से जो उलटफेर और अजीब नतीजों का सिलसिला शुरू हुआ है, उसने इस विश्व कप में जान डाल दी है. पहले ही मैच में मेजबान इंग्लैंड पर हॉलैंड की सनसनीखेज जीत, फिर वेस्ट इंडीज और श्रीलंका से हार कर ऑस्ट्रेलिया का बाहर हो जाना. कंगारुओं के पीछे-पीछे आयरलैंड से हार कर बांग्लादेश का पहले ही राउंड में बाहर हो जाना इस विश्प कप की कहानी में वे सारे ट्विस्ट हैं जिससे बीस-बीस ओवरों का यह खेल और मज़ेदार बन गया है. पहले ही मैच में इंग्लैंड की हार ने टी-20 विश्व कप के समीकरणों को झकझोर दिया. इस मैच में वे सारे मसाले मिले जो किसी 20-20 मैच में लोग देखना चाहते हैं. डेविड बनाम गोलियाथ की इस लड़ाई में डेविड यानी हॉलैंड को जीत भी बड़े नाटकीय ढंग से आख़िरी गेंद पर मिली. इंग्लैंड ने फिर वापसी करते हुए पाकिस्तान को बुरी तरह से पीट दिया. ग्रुप बी में इस उलटफेर ने सुपर ऐट के समीकरणों को भी टेढ़ा-मेढ़ा कर दिया.

वहीं ऑस्ट्रेलिया को शुरुआत में ही एक-दो नहीं, तीन करारे झटके लगे. पहले अपने रंगीले व्यवहार के लिए (कु)ख्यात सायमंड्स ने फिर ग़लती कर दी. उन्होंने शराब पी और फिर पकड़े भी गए. उन्हें बाहर का रास्ता दिखा दिया गया. दूसरा झटका टीम को लगा अपने पहले मैच में, जहां वेस्ट इंडीज ने कंगारुओं को टिकने का मौका ही नहीं दिया. अंत में श्रीलंका से छह विकेट से हार कर वह इस विश्व कप के पहले ही राउंड में बाहर हो गया.

भारत के लिए राहत की बात है कि उसे सबसे आसान नज़र आने वाला ग्रुप मिला. भारत को बांग्लादेश के ख़िलाफ़ जीतने में कोई ख़ास परेशानी नहीं हुई और वह सुपर ऐट में पहुंच गया. लेकिन चोटिल सहवाग के विश्व कप से बाहर हो जाने से टीम को ज़ोरदार झटका लगा है. उनकी जगह दिनेश कार्तिक को लंदन भेजा गया है.

चमका भारत का भी लाल

लिएंडर पेस. एक और ग्रैंड स्लैम. एक और जीत. साफ है कि सालों से चमकते भारतीय टेनिस के इस सूरज की चमक अभी कम नहीं हुई है. फ्रेंच ओपन के डबल्स में उनकी इस जीत ने फिर याद दिलाया है कि टेनिस के मैदान पर भारत की भी मौजूदगी है. लुकास डलोही के साथ जोड़ी बनाने के बाद यह उनका पहला डबल्स ख़िताब था. वैसे पेस का यह पांचवा डबल्स ग्रैंड स्लैम था. इंडियन एक्सप्रेस के तौर पर उनका जीतना तो पूरे भारत के लिए गर्व का विषय रहा, दूसरे जोड़ीदारों के साथ उनका जीतना भी भारतीय टेनिस के लिए बड़ी जीत है.

ओलंपिक पद विजेता पहलवान सुशील पर लगी रोक

कुश्ती में भारत के लिए 56 साल बाद ओलंपिक पदक जीतने वाले सुशील कुमार का करियर ख़त्म होने वाला है. पटाया में एशियाई चैंपियनशिप में अधिक वजन का हो जाने के कारण उन्हें अयोग्य ठहरा दिया गया. इस मामले को खेल मंत्रालय ने काफी गंभीरता से लिया है. मंत्रालय की नाराज़गी इसी से समझी जा सकती है कि उसने सुशील कुमार पर आगे किसी प्रतियोगिता में भाग लेने पर रोक लगा दी. इतना ही नहीं, उसने कुश्ती के दो कोचों को चेतावनी भी दी है. इन दो कोचों के नाम हैं- जसबीर सिंह और ब्लादीमिर मेस्तविरिश्विली. सुशील की हरक़तों पर खेल मंत्रालय काफी समय से नज़र रख रहा था. पिछले महीने पटाया में भी उनके मैट पर न उतरने के मामले को पहले छिपाने की पूरी कोशिश की गई थी. वह वहां 66 किलो वजन वर्ग में हिस्सा लेने गए थे. शुरू में बताया गया कि बुख़ार हो जाने से वह मैट पर भाग्य नहीं आजमा सके. जबकि मामला वजन बढ़ जाने का था. अगले साल दिल्ली में होने जा रहे राष्ट्रमंडल खेलों के मद्देनजर भारतीय टीम पिछले दिनों कई बार अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता में भाग लेने गई, लेकिन सुशील एक बार भी चुनौती पेश करने नहीं उतरे. इस साल फरवरी में अमेरिका में हुई अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में ऐन मौके पर उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया था. इसके कारण भारतीय टीम को सुशील कुमार के बिना ही जाना पड़ा था और भारतीय कुश्ती महासंघ ने इसे अनुशासनहीनता मानते हुए एक जांच समिति भी बना दी थी. बाद में इस मामले में खेल मंत्रालय की संचालन समिति ने सुशील और उनके कोचों को नोटिस जारी किया था. रोक लगाने का फ़ैसला नोटिस पर सुनवाई के दौरान ही हुआ. खेल मंत्रालय की संचालन समिति के अध्यक्ष राहुल भटनागर का कहना है कि ऐसी लापरवाही की यह पहली घटना है. सवाल है कि जब सरकार खिलाड़ियों पर पूरा ख़र्च कर रही है और उन्हें सारी सुविधाएं भी दे रही है तो वे खेल को संजीदगी से क्यों नहीं ले रहे हैं?

शिखर पर फेडरर

रोलां गैरों की लाल बजरी वाली मिट्टी पर इतिहास लिखा गया. फाइनल में फ्रेंच ओपन के साथ-साथ टेनिस के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी का ख़िताब भी दांव पर लगा था. मुक़ाबला ख़त्म हुआ और रोजर फेडरर ने अपना चौदहवां ग्रैंड स्लैम जीत लिया. ऐसा टेनिस इतिहास में महज़ दूसरी बार हुआ है और इस कारनामे को सबसे पहले करने वाले पीट सैंप्रास ने भी इस जीत के बाद मान लिया कि रोजर ही सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी हैं. सैंप्रास का कहना था कि रोजर फेडरर की इस जीत से इतिहास में सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी के रूप में उनकी स्थिति और मज़बूत हो जाएगी. हालांकि यह सैंप्रास का बड़प्पन भी है. वह ख़ुद एक महान चैंपियन हैं, और इससे पहले कई बार फेडरर को सर्वश्रेष्ठ कह चुके हैं. ऐसा ही फेडरर के साथ भी है. लेकिन सैंप्रास की इस बात में भी सच्चाई कम नहीं. फेडरर न सिर्फ़ सबसे ज़्यादा ग्रैंड स्लैम जीतने वालों में सैंप्रास की बराबरी पर पहुंच गए हैं, बल्कि उन्होंने ऐसा भी कुछ कर दिखाया है जो उन्हें सैंप्रास से आगे ले जाता है. वह उन चुनिंदा खिलाड़ियों में शामिल हो गए हैं जिन्होंने चारों ग्रैंड स्लैमों पर क़ब्ज़ा जमाया है. सैंप्रास कभी फ्रेंच ओपन नहीं जीत पाए. इसमें कोई शक़ नहीं कि फेडरर का समय ख़त्म होने को है. नडाल ने नंबर वन की जगह ले ली है, लेकिन रोजर में सैंप्रास से आगे निकलने का दम अभी बाक़ी है. बहरहाल, फ्रेंच ओपन में महिला सिंगल्स रूस की स्वेतलाना कुजनेत्सोवा ने जीता. उन्होंने हमवतन दिनारा साफिना को सीधे सेटों में मात दी.

आईसीएल का शोकगीत

आईसीएल यानी इंडियन क्रिकेट लीग. बीसीसीआई से अलग हटकर बनाई गई इस लीग की शुरुआत काफी हंगामेदार रही थी. जितने उत्साह के साथ इसका आगाज़ हुआ था उसे लगा था कि इसका अंज़ाम भी ऐसा ही होगा. लेकिन बीसीसीआई से बग़ावत करके इसमें कई खिलाड़ी और पूर्व खिलाड़ी जुड़े भी लेकिन इसका रास्ता कभी आसान नहीं हुआ. जिन भारतीय खिलाड़ियों ने इसमें हिस्सा लिया, उनका भारत के लिए खेलना असंभव हो गया. आईसीएल में उन खिलाड़ियों को खेलने का मौका मिला था, जो या तो क्रिकेट में करियर बनाना चाहते थे या फिर वे जिन्होंने क्रिकेट जगत में अपना मुक़ाम हासिल किया था और अपने अंतिम पड़ाव पर थे. एक का सपना शोहरत का था तो दूसरे का पैसे का. आईसीएल में उन्हें अपना सपना साकार होते भी दिखने लगा था लेकिन बीसीसीआई ने उन खिलाड़ियों की उम्मीदों को मटियामेट कर दिया जो भारतीय टीम में जगह बनाना चाहते थे. बीसीसीआई ने आईसीएल में खेलने वाले खिलाड़ियों पर घरेलू और अंतरराष्ट्रीय मैच में खेलने पर प्रतिबंध लगा दिया. आईपीएल ने कमाई के भी रास्ते बंद करा दिए. इन खिलाड़ियों का भविष्य अंधकार में था. लेकिन अब बीसीसीआई ने उन खिलाड़ियों के लिए उम्मीद की नई किरण जगाई जो आईसीएल में जाकर ख़ुद को फंसा हुआ महसूस कर रहे थे. बीसीसीआई ने आईसीएल से संबंध तोड़ने वाले 79 वर्तमान और 11 पूर्व खिलाड़ियों को राहत दे दी है. यानी यह न अब सिर्फ़ घरेलू बल्कि अंतरराष्ट्रीय मैचों के लिए भी भारतीय टीम में शामिल हो सकते हैं. बीसीसीआई के मुताबिक कुल मिलकर 101 खिलाड़ियों और अन्य ने आईसीएल से नाता तोड़ लिया है. आईसीएल को अलविदा कहने वाले खिलाड़ियों में प्रमुख नाम हैं रोहन गावस्कर, दीप दासगुप्ता, दिनेश मोंगिया, रीतेंद्र सिंह सोढ़ी और हेमांग बदानी. पूर्व टेस्ट खिलाड़ियों में अजित वाडेकर, इरापल्ली प्रसन्ना, संदीप पाटिल, मदनलाल और बलविंदर सिंह संधू के नाम प्रमुख हैं. इनमें से अधिकतर आईसीएल में हिस्सा लेनी वाली टीमों के कोच थे. अब आईसीएल के वजूद पर ख़तरा मंडराने लगा है. जब खिलाड़ी और कोच ही नहीं रहेंगे तो मैच का आयोजन कैसे हो सकता है. हालांकि इसके बचे खुचे सिपहसलार कपिलदेव, किरन मोरे और हिमांशु मोदी अभी भी उम्मीद जता रहे हैं कि आईसीएल बच जाएगा, लेकिन अब यह असंभव लगता है.

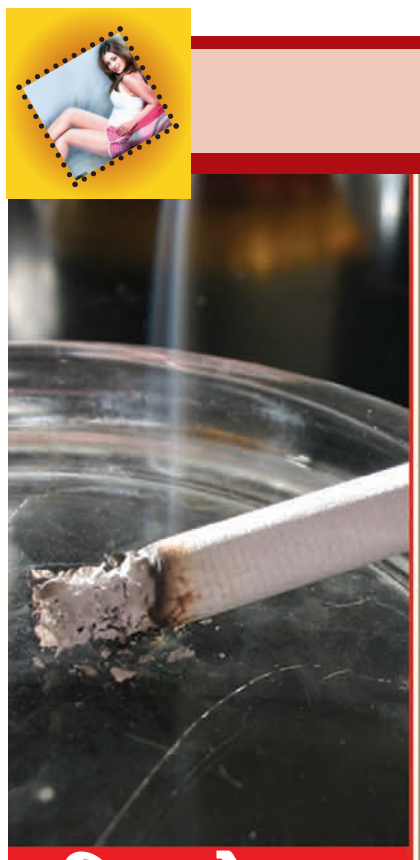

फिर से दम मारो दम...

अंबुमणि रामदास जब तक स्वास्थ्य मंत्री नहीं बने थे, तब तक तमिलनाडु से बाहर उन्हें कोई नहीं जानता था. एम्स के पूर्व निदेशक वेणुगोपाल से निजी खुंदक रखने के कारण भी वह आम लोगों के बीच उतने चर्चित नहीं हुए थे, जितने सिगरेट पर शाहरुख़ ख़ान के साथ नोक-झोंक करने को लेकर हुए. रामदास ने एक दिन अचानक फिल्म वालों को फ़रमान जारी कर दिया कि वे पर्दे पर धूम्रपान न दिखाएं. इस तरह का तुग़लकी फ़रमान जारी करने से पहले

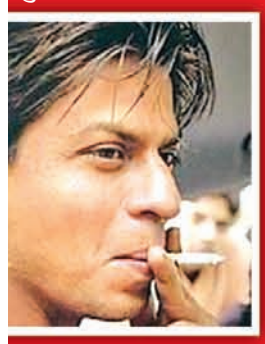

उन्होंने यह भी नहीं सोचा था कि फिल्मों के लिए देश में सेंसर बोर्ड बना है, जिसके अपने क़ायदे-क़ानून हैं और उसी के हिसाब से वह फिल्मों को सर्टिफिकेट देता है. लेकिन एम्स रहा हो या बॉलीवुड, उन्हें तो दूसरों की स्वायत्तता में दखलंदाजी का लाइलाज रोग लगा था. उन्होंने किसी की नहीं सुनी. शाहरुख़ से लेकर महेश भट्ट तक के इन तर्कों को नकार दिया कि हाथ में सिगरेट रख कर अभिनय कई बार उसी तरह जानदार हो जाता है, जैसे कलम आदि रख कर. अभिनय में आंसू आने से ऐन पहले के तनाव और संत्रास को दिखाने के लिए कई बार सिगरेट बड़ा काम आता है. ख़ैर रामदास के चुनाव हारने के बाद बॉलीवुड ने राहत की सांस ली. गुलाम नबी आज़ाद के स्वास्थ्य मंत्री बनने से तो बॉलीवुड और ख़ुश है, क्योंकि उन्होंने धूम्रपान को लेकर रामदास से उलटी राय दे दी है. फिल्म वालों ने उनके इस रुख़ को तहे दिल से सराहा है. साथ ही यह वादा भी किया है कि ज़रूरी नहीं हुआ तो निर्माता-निर्देशक ख़ुद ऐसे दृश्यों को फिल्म में नहीं दिखाएंगे. रामदास के ख़िलाफ़ इस मामले में सुप्रीम कोर्ट तक जाने वाले मशहूर निर्माता-निर्देशक महेश भट्ट का कहना है कि इस तरह की पाबंदी दरअसल व्यावहारिक भी नहीं है. उन्होंने कहा है कि हम लोग फिल्मों में धूमपान को स्वयं ही बढ़ा-चढ़ा कर नहीं दिखाते. आख़िर फिल्म वाले भी ज़िम्मेदार नागरिक हैं. नए स्वास्थ्य मंत्री से भट्ट साहब इतने ख़ुश हैं कि उन्होंने सोच में उन्हें रामदास से एक जन्म आगे का बता दिया है.

अब नए लुक से रिझाएंगी रिया

यूं तो नया करने में सब लगे ही रहते हैं, लेकिन रिया सेन तो नया में कुछ नया करने में लगी रहती हैं. लेकिन वह जो कुछ करती हैं, वह छिप-छिप कर. ताकि उनको लेकर लोगों में उत्सुकता बनी रहे. सवाल है कि जब उनके पास कोई ख़ास फिल्म भी नहीं है, तब ऐसा क्या कर रही हैं कि इतनी अधिक चर्चा हो रही है ?

इसका जवाब हम देते हैं. दरअसल वह अपने नए लुक को लेकर चर्चा में हैं. आने वाली अपनी नई फिल्म पेइंग गेस्ट में वह एक नए किरदार में नज़र आएंगी. मल्टीस्टार फिल्म इस फिल्म के निर्माता सुभाष घई हैं. वैसे भी सुभाष घई ने जब भी मल्टीस्टारर फिल्में बनाई हैं, वह ख़ूब चली हैं.

मुक्ता आर्ट्स ने इस फिल्म में रिया को पहले कोई और रोल ऑफर किया था, जिसे उन्होंने करने से मना कर दिया था. इसलिए कि वह हमेशा कुछ नया करने की ही सोचती हैं. रिया हमेशा कुछ ओवरसेंसेटिव व ओवर ड्रामैटिक तरीक़े का रोल करने की इच्छा बताती हैं. इसलिए उन्होंने वह रोल नहीं किया, क्योंकि उसमें उन्हें कुछ नया नहीं लग रहा था. अब वह भूमिका नेहा धूपिया निभा रही हैं. रिया ने इस फिल्म में अपने लिए बॉर्बी लुक वाले रोल को स्वीकार किया है. वैसे रिया की जब भी बात चलती है तो उसकी शुरुआत मुनमुन सेन की बेटी से होती है. इसलिए कि बॉलीवुड में काफी हद तक असफल साबित हुईं मुनमुन की चर्चा कर रिया को कमतर घोषित किया जाए. जबकि सच्चाई यह है कि रिया का हॉट एंड सेक्सी अंदाज़ सबकी छुट्टी कर देता है. अब देखना यह है कि वह अपने नए बॉर्बी लुक से किस-किस की छुट्टी करती हैं.

जेनिलिया के जलवे

जेनिलिया ने बॉलीवुड में अपने करियर की शुरुआत *जाने तू या जाने ना* से की थी. इस फिल्म से उन्होंने काफी तारीफें बटोरी थीं. अमिताभ बच्चन तक ने उनकी तारीफ करते हुए कहा था कि वह उनके साथ फिल्म करना चाहेंगे. लेकिन लगता है कि इन प्रशंसाओं का उन पर निगेटिव असर पड़ गया है. जी हां, हिंदी फिल्म इंडस्ट्री में शानदार एंट्री करने वाली जेनिलिया डिसूज़ा ने अपनी मांग बढ़ा दी है. अभी हाल ही में एक फिल्म के लिए उन्होंने एक करोड़ रुपये की डिमांड की है. अपनी फिल्मों के लिए अब तक 70 लाख रुपये तक मांगने वाली जेनिलिया के इस रुख़ से सब हैरान हैं. बहरहाल, दूसरे निर्माता जो कहें लेकिन संतोष सुब्रह्मण्यम तो जेनी को एक करोड़ देने के लिए राज़ी हो गए हैं. अगर ऐसा हुआ तो नयनतारा और अनुष्का के बाद जेनिलिया बॉलीवुड की तीसरी नवोदित अभिनेत्री होंगी, जिनकी फीस एक करोड़ होगी. वैसे जेनी इन दिनों कुछ दूसरे कारणों से भी चर्चा में हैं. कहा जा रहा है कि आजकल रीतेश देशमुख के साथ उनका चक्कर चल रहा है. हालांकि इसे छुपाने की उन्होंने काफी कोशिश की थी, लेकिन इश्क भी कहीं छुपाए छुपता है. ये दोनों भले कभी अपने क़रीबी रिलेशनशिप की बात स्वीकार न करें, लेकिन पूरा बॉलीवुड इससे अच्छी तरह वाक़िफ़ है कि दोनों पिछले दिनों साथ-साथ घूमते नज़र आए थे. इतना ही नहीं, रीतेश ने जब पापा विलासराव देशमुख के केंद्रीय मंत्री बनने की ख़ुशी में अपने दोस्तों को पार्टी दी थी तो उसमें स्पेशल गेस्ट के रूप में जेनी भी मौजूद थीं. जब तक वे संभलते, तब तक तो सबूत कैमरे में कैद भी हो चुके थे.

विद्या वालन की अजीब दास्तान

विद्या वालन की ग्रह दशा शायद कुछ ठीक नहीं है. तभी तो इतनी प्रतिभाशाली और सुंदर होने के बावजूद उनकी चर्चा ऐसे मामलों में होती है, जो उनके करियर के लिहाज़ से उचित नहीं कहा जा सकता. इसका अहसास उन्हें भी है. इसलिए फिल्म *चेनाब गांधी* में महत्वपूर्ण भूमिका मिलने से हाल तक ख़ुश दिखाई देतीं विद्या अब उसकी बात आते ही चुप हो जाती हैं. आख़िर ऐसा क्या हो गया कि संजय लीला भंसाली की फिल्म मिलने के बाद भी वह दुखी हैं, जबकि इसमें अमिताभ बच्चन भी हैं. पता करने पर जो बात सामने आई, वह वाकई दुखदायी है. दरअसल इस फिल्म में उनके अपोजिट काम करने के लिए कोई हीरो तैयार ही नहीं हो रहा है. और तो और, उस शाहिद कपूर तक ने उनके साथ काम करने से मना कर दिया है जिसके साथ *किस्मत कनेक्शन* की शूटिंग के दिनों न जाने कितनी अफवाहें चल पड़ी थीं. कोई हीरो न मिलने के कारण *चेनाब गांधी* की शूटिंग भी लटक गई है. पहले जून में ही शुरू होने वाली शूटिंग अब नवंबर में होगी. संजय लीला भंसाली इस फिल्म के निर्माता हैं, जबकि निर्देशन की बागडोर उनके सहायक रहे विभु पुरी संभाल रहे हैं. अलग तरह की फिल्म होने से दोनों को इससे बहुत उम्मीदें हैं.

इसलिए कोहिनूर हैं अमिताभ

सोनिका अग्रवाल

अभी पिछले दिनों जब प्रकाश मेहरा का निधन हुआ था तो सबने उन्हें अमिताभ बच्चन को बिग-बी बनाने वाला असली निर्माता-निर्देशक बताया था. थोड़ा श्रेय मनमोहन देसाई को भी दे दिया गया था. लेकिन इस श्रेय का जो असली हक़दार था, लोग उसे भूल गए थे. वह कोई और नहीं, ख़ुद अमिताभ बच्चन हैं. इसलिए कि तराशा हीरे को जाता है, कोयले को नहीं. आज अमिताभ क्यों बॉलीवुड के कोहिनूर हैं, इसे वह बार-बार साबित करते रहे हैं. *शहंशाह* के फ्लॉप होने के बाद जब पूरी दुनिया ने उन्हें ख़त्म हुआ मान लिया था, तो वह *हम* लेकर आए. एक साथ तीन सौ सिनेमाघरों में रिलीज होने वाली वह हिंदी की पहली फिल्म थी. वह दिन था और आज का दिन है. बीच में फिर धीमे पड़ने के बावजूद वह जल्द ही सबके लिए *मोहब्बतें* हो गए. *कभी ख़ुशी कभी ग़म* दिखाते वह आज उन्होंने उस ऊंचे मुक़ाम को पा लिया है, जहां से यही कहा जा सकता है-*कभी अलविदा न कहना*. सिर्फ़ *झूम बराबर झूम*...

यह दोहराने की ज़रूरत नहीं है कि अमिताभ सुपर स्टार हैं. वह तो लगभग तीन दशक से हैं. उनका जिक्र हमेशा हिंदी सिनेमा के महानायक के तौर पर होता है और होता रहेगा भी. लेकिन एक कसक भी हमेशा से उन्हें और उनके प्रशंसकों को अवश्य रही है. वह यह कि जब भी स्टार के बदले कलाकार की बात चलती है तो आलोचक उनसे पहले दिलीप कुमार और संजीव कुमार को रख देते हैं. अमिताभ ने अपने को एक मुकम्मल कलाकार साबित करने के लिए लीक से हटकर कई फिल्में भी कीं. *अभिमान, आलाप* से लेकर *ब्लैक, सरकार* और *चीनी कम* तक में अलग-अलग तरह की भूमिका निभाकर उन्होंने ख़ुद को साबित भी किया है. फिर भी आलोचकों ने उन्हें कभी पूरा श्रेय नहीं दिया. लिहाजा, उन्होंने *चीनी कम* वाले आर बालकृष्णन की नई फिल्म*पा* में ऐसी भूमिका निभाने का जोख़िम उठाया है, जो उन्हें महानतम कलाकार के रूप में स्थापित करता है. इस में वह पहली बार पूरी तरह गंजे दिखाई देंगे. *पा* में उन्होंने मानसिक रूप से कमज़ोर बच्चे की भूमिका निभाई है. उनके पिता की भूमिका अभिषेक बच्चन कर रहे हैं.

यह भी अजूबा ही है कि कोई बेटा किसी फिल्म में पिता के पिता की भूमिका निभाए. इस फिल्म में उस तरह की भूमिका की है, जिसके लिए संजीव कुमार और कमल हासन मशहूर रहे हैं. अमिताभ ने *पा* में अलग तरह का गेटअप रखा है, वह पहली बार गंजे दिखाई देंगे. *पा* में कहानी एक ऐसे आदमी की है, जिसके विकास की गति आम आदमी की तुलना में काफी तेज़ है. कहते हैं कि अमिताभ को गंजे का लुक देने के लिए मेकअप आर्टिस्ट को लगभग छह घंटे का समय लगा. जहां तक पिता-पुत्र यानी अमिताभ और अभिषेक के एक साथ फिल्म करने की बात है तो *पा* से पहले भी दोनों कई फिल्में कर चुके हैं. इनमें *कभी अलविदा न कहना, बंटी और बबली, सरकार, झूम बराबर झूम* आदि प्रमुख हैं. दोनों की यह जोड़ी इस समय किसी हीरो-हीरोइन से अधिक हिट मानी जा रही है. यही कारण है कि अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त फ्रेंच निर्देशक जॉन कुनेन ने जब दलाई लामा पर फिल्म बनाने की सोची, अमिताभ और अभिषेक को ही लिया. इसलिए यह कहना ग़लत नहीं होगा कि अमिताभ आज हिंदी सिनेमा के पर्याय हो गए हैं. वह जितना आगे जाते हैं, हिंदी सिनेमा का उतना ही विकास होता है.

sonika.chauthiduniya@gmail.com

करीना के विवेक

बॉलीवुड में बेबो कही जाने वाली करीना हमेशा ही ख़बरों में रहती हैं. कभी अपने प्रेमियों के लिए तो कभी साइज ज़ीरो तो कभी परोपकार की ख़ातिर. इस बार भी वह दो कारणों से चर्चा में हैं. लेकिन पहले बात मित्र के कारण हुई चर्चा की. वह भी उसकी शादी को लेकर. हालांकि अपनी शादी के लिए वह ख़ुद को समझा नहीं पा रही हैं. बात आते ही दूर हो जाती हैं. कह देती हैं कि अभी मेरी शादी में बहुत समय बाक़ी है. यानी करीना ख़ुद शादी कब करेंगी, यह तो बता नहीं रहीं मगर वे अपने दोस्तों की जोड़ियां बनवाने में जी-जान से जुट गई हैं. अभी कुछ समय पहले उन्होंने अमृता अरोड़ा को ससुराल भिजवाया है, अब विवेक ओबेराय की दुल्हन तलाशने में जुट गई हैं. ग़ौरतलब है करीना और विवेक इन दिनों रेंसिल डिसिल्वा की फिल्म *क़ुर्बान* (फिलहाल जिहाद) में काम कर रहे हैं. दोनों अच्छे दोस्त भी हैं. दोनों एक-दूसरे से दिल की बातें भी शेयर करते हैं. बेशक विवेक हर किसी से कहें कि वह इस समय अपने करियर पर ध्यान देना चाहते हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि करीना उनके लिए दुल्हन तलाश रही हैं. करीना को लगता है कि विवेक को शादी कर अब घर बसा लेना चाहिए. वैसे विवेक ख़ुद भी कहने लगे हैं-हां, अब मुझे ऐसी लड़की की तलाश है, जो मुझे दोबारा सिंगल न कर दे. बहरहाल, ऐश से दोस्ती करके दुनिया भर में बदनाम हो गए विवेक के लिए उम्मीद की जानी चाहिए कि करीना की कोशिशों से उनका निजी जीवन अब पटरी पर आ जाएगा.

बहरहाल, यह तो करीना के परोपकार की बात. अब ज़रा उनकी निजी पसंद की बात जान लीजिए. दुनिया जानती है कि बेबो को डिज़ाइनर फुटवियर्स पहनने का बहुत शौक है. लेकिन हद तो तब हो गई, जब करीना ने *कमबख्त इश्क* की शूटिंग के लिए एक-दो नहीं, बल्कि 55 जोड़ी फुटवियर्स मंगवा लिए. जहां तक ड्रेसों की बात है, तो 22 ड्रेस मंगाई गई थी. इस तरह करीना ने 22 ड्रेसों के साथ कुल 55 जोड़ी फुटवियर्स पहने. वैसे करीना के क़रीबी लोगों की मानें तो वह डिज़ाइनर ड्रेसों के बजाय डिज़ाइनर फुटवियर्स को अधिक प्राथमिकता देती हैं. वह जब किसी प्रोग्राम या पार्टी आदि में जाती हैं, तब भी वह इसे तवज्जो देती हैं. यानी उनकी ड्रेस तो साधारण हो सकती है, लेकिन फुटवियर्स तो विशेष ही होते हैं. दरअसल वह वाइएसएल और क्रिश्चियन लॉओबोटन के फुटवियर्स पहनती हैं. लेकिन जब वह शूटिंग नहीं कर रही होती हैं यानी जब वह घर में रहती हैं, तब जो चप्पलें पहनती हैं वह हर्मिज ब्रांड की होती हैं. उनके दोस्त बताते हैं कि बेबो ने हाल में ही हर्मिज ब्रांड की छह जोड़ी चप्पलें ली हैं. उनकी क़ीमत न ही पूछें तो अच्छा.